दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

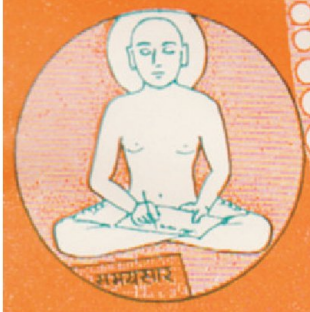

सच्चुजि सव्वह धम्मण पहाणु ।
सच्चुजि महियल गरुयणिहाणु ।।
सच्चुजि संसार समुद्द सेउ ।
सच्चुजि सव्वह मण सुकख हेउ ।।

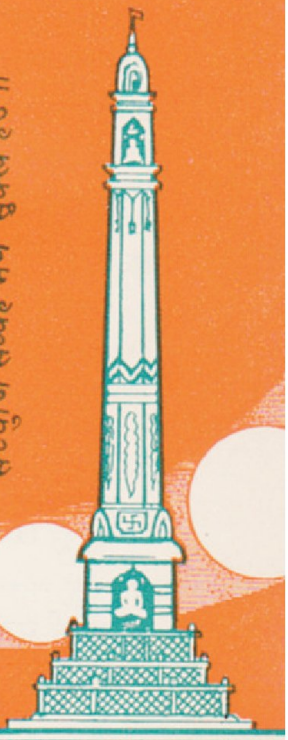

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [३८७]

[शाश्वत सुख का मार्गदर्शक आध्यात्मिक हिन्दी मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ अब हम आतम को पहचान्यो
२ धर्म कहाँ ?
३ संपादकीय : उत्तम सत्य
४ दृष्टि की डोरी चैतन्य से बाँध दे
५ जिनवचसि रमन्ते
[समयसार प्रवचन]
६ मोक्ष और मोक्ष का उपाय
[नियमसार प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० पाठकों के पत्र
११ प्रबंध संपादक की कलम से

सत्यधर्म सब धर्मों में प्रधान है, सत्य पृथ्वी पर गौरव का निधान है। सत्य संसार-समुद्र का सेतु है। सत्य सबके मन में सुख उत्पन्न करनेवाला है।

- महाकवि रइधू

(मूल छंद मुखपृष्ठ पर दिया गया है)

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३३ [३८७] अंक : ३

अब हम आतम को पहचान्यो ॥टेक॥

जब ही सेती मोह सुभट बल,
छिनक एक में भान्यो ॥अब० ॥
राग विरोध विभाव भजे झर,
ममता भाव पलान्यो।
दर्शन-ज्ञान-चरनमय चेतन,
भेद रहित परवान्यो ॥अब० ॥
जिहि देख्यो हम अवर न देख्यो,
देख्यो सो सरधान्यो।
ताको कहो, कहें कैसे करि,
जा जानें जिमि जान्यो ॥अब० ॥
पूरव भाव स्वपनवत देखे,
अपनो अनुभव तान्यो।
'द्यानत' ता अनुभव स्वादत ही,
जनम सफल करि मान्यो ॥अब० ॥

धर्म कहाँ ?

[श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार की पंडित सदासुखदासजी कासलीवाल कृत भाषावचनिका से उद्धृत]

''संसार में ऐसा नाम तो समस्त लोक कहै है, परंतु धर्म शब्द का अर्थ तो ऐसा; जो नरकतिर्यंचादिक गति में परिभ्रमणरूप दु:ख तैं आत्माकूँ छुड़ाय उत्तम आत्मीक, अविनाशी, अतीन्द्रिय मोक्षसुख में धारण करै सो धर्म है।

सो ऐसा धर्म मोल नाहीं आवै जो धन खरचि दानसन्मानादिकतैं ग्रहण करिये। तथा किसी का दिया नाहीं आवै जो सेवा उपासनातैं राजी कर लिया जाय। तथा मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि, देवमूर्त्ति, तीर्थादिकन में नाहीं धर्‌या है जो वहाँ जाय ल्याइये। तथा उपवास-व्रत, कायक्लेशादि-तपतैं हूँ, शरीरादि कृष करनेतैं हूं नाहीं मिलै। तथा देवाधिदेव के मंदिरमें उपकरणदान, मंडलपूजनादिकरि तथा गृह छोड़ बन-स्मशान में बसनेकरि तथा परमेश्वर के नामजाप्यादिककरि धर्म नहीं पाइये है।

धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। जो पर में आत्मबुद्धि छोड़ अपना ज्ञातादृष्टारूप स्वभाव का श्रद्धान, अनुभव तथा ज्ञायकस्वभावमें ही प्रवर्तनरूप जो आचरण सो धर्म है।

तथा उत्तमक्षमादि दशलक्षणरूप अपना आत्मा का परिणमन तथा रत्नत्रयरूप तथा जीवन की दयारूप आत्मा की परिणति होय तदि आत्मा आप ही धर्मरूप होयगा। परद्रव्य-क्षेत्र-कालादिक तौ निमित्त मात्र हैं। जिसकाल यह आत्मा रागादिरूप परणति छांड़ि वीतरागरूप हुवा देखै है तदि मंदिर, प्रतिमा, तीर्थ, दान, तप, जप समस्त ही धर्मरूप हैं। अर अपना आत्मा उत्तमक्षमादि वीतरागरूप सम्यग्ज्ञानरूप नाहीं होय तो वहाँ कहीं हूँ धर्म नाहीं होय।

शुभराग होय जदि पुण्यबंध होय है। अर अशुभराग, द्वेष, मोह होय तहाँ पापबंध होय है। जहाँ शुद्धश्रद्धान-ज्ञान-स्वरूपाचरण धर्म है तहाँ बंधका अभाव है। बंधका अभाव भये ही उत्तम सुख होय है।''

सम्पादकीय

उत्तम सत्य

एक विश्लेषण

सत्यधर्म की चर्चा जब भी चलती है, तब-तब प्राय: सत्यवचन को ही सत्यधर्म समझ लिया जाता है। सत्यधर्म के नाम पर सत्यवचन के ही गीत गाये जाने लगते हैं।

कहा जाता है कि सत्य बोलना चाहिये, झूठ कभी नहीं बोलना चाहिये। झूठे का कोई विश्वास नहीं करता। दुकानदारी में भी जिसकी एक बार सत्यता की धाक जम गयी सो जम गयी, फिर चाहे दुगने पैसे भी क्यों न लो, कोई नहीं पूछता।

जरा विचार तो करो कि यह सत्यवचन बोलने का उपदेश है या सत्य की ओट में लूटने का। मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि हम सत्यवचन का भी सही प्रयोजन नहीं समझते हैं तो फिर सत्यधर्म की बात तो बहुत दूर है।

सामान्यजन तो सत्यवचन को सत्यधर्म समझते ही हैं; किंतु आश्चर्य तो तब होता है कि जब सत्यधर्म पर वर्षों से व्याख्यान करनेवाले विद्वज्जन भी सत्यवचन से आगे नहीं बढ़ते हैं।

यद्यपि सत्यवचन को भी जिनागम में व्यवहार से सत्यधर्म कह दिया गया है और उस पर विस्तृत प्रकाश भी डाला है, उसका भी अपना महत्त्व है, उपयोगिता है; तथापि जब गहराई में जाकर निश्चय से विचार करते हैं तो सत्यवचन और सत्यधर्म में महान अंतर दिखायी देता है। सत्यधर्म और सत्यवचन बिलकुल भिन्न-भिन्न दो चीजें प्रतीत होती हैं।

ध्यान रहे यहाँ पर जिनागम में वर्णित उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव, उत्तमआर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य आदि दशधर्मों में जो उत्तमसत्य धर्म कहा गया है - उसकी चर्चा अपेक्षित है। यहाँ सत्यधर्म का समस्त विश्लेषण उक्त प्रसंग में ही किया जा रहा है।

गाँधीजी ने भी सत्य को वचन की सीमा से ऊपर स्वीकार किया है। वे सत्य को ईश्वर के रूप में देखते हैं (Truth is God)।

जहाँ सत्य की खोज, सत्य की उपासना की बात चलती है, वहाँ निश्चितरूप से सत्यवचन की खोज अपेक्षित नहीं होती वरन् कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण अव्यक्त सत्य अपेक्षित होता है जो उपास्य हो, आश्रय के योग्य हो। दार्शनिकों और आध्यात्मिकों का उपास्य, आश्रयदाता सत्य मात्रवचनरूप नहीं हो सकता। जिसके आश्रय से धर्म प्रगट हो, जो अनंत सुख-शांति का आश्रय बन सके; ऐसा सत्य कोई महान् चेतनतत्त्व ही हो सकता है, उसे वाग्विलास तक सीमित नहीं किया जा सकता। उसे वचनों तक सीमित करना स्वयं ही सबसे बड़ा असत्य है।

आचार्यों ने वाणी की सत्यता और वाणी के संयम पर भी विचार किया है, पर उसे सत्यधर्म से अलग ही रखा है। वाणी की सत्यता और वाणी के संयम को जीवन में उतारने के लिये उन्होंने चार स्थानों पर बाँधा है - (१) सत्याणुव्रत, (२) सत्यमहाव्रत, (३) भाषासमिति, (४) वचनगुप्ति।

मुख्यरूप से स्थूल झूठ नहीं बोलना सत्याणुव्रत है। सूक्ष्म भी झूठ नहीं बोलना, सदा सत्य ही बोलना सत्यमहाव्रत है। सत्य भी कठोर, अप्रिय, असीमित न बोलकर; हित-मित एवं प्रियवचन बोलना भाषासमिति है। और बोलना ही नहीं, वचनगुप्ति है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जिनागम में वचन को सत्य एवं संयमित रखने के लिये उसे चार स्थानों पर प्रतिबंधित किया है। तात्पर्य यह है कि यदि बिना बोले चल जावे तो बोलो ही मत। न चले तो हित-मित-प्रिय वचन बोलो और वह भी पूर्णतः सत्य। यदि सूक्ष्म असत्य से न बच सको तो स्थूल असत्य तो कभी न बोलो।

यहाँ वचन को अस्ति (पॉजिटिव) और नास्ति (निगेटिव) दोनों ओर से पकड़ लिया है। सत्याणुव्रत, सत्यमहाव्रत और भाषासमिति में क्या बोलें और कैसे बोलें के रूप में अस्ति (पॉजिटिव) को तथा वचनगुप्ति में बोलें ही नहीं (मौन) के रूप में नास्ति (निगेटिव) को ले लिया है। इस तरह यहाँ बोलना और नहीं बोलना वाणी के दोनों ही पहलुओं को ले लिया गया है।

वाणी को इतना संयमित कर देने के बाद अब क्या शेष रह जाता है कि जिस कारण सत्यधर्म को भी आप भाषा की सीमा में बाँधना चाहते हैं ?

सत्यधर्म को वचन तक सीमित कर देने से एक बड़ा नुकसान यह हुआ कि उसकी

खोज ही खो गयी। जिसकी खोज जारी हो उसका मिलना संभव है, पर जिसकी खोज ही खो गयी हो वह कैसे मिले ? जब तक सत्य को समझते नहीं, खोज चालू रहती है। किंतु जब किसी गलत चीज़ को सत्य मान लिया जाता है तो उसकी खोज भी बंद कर दी जाती है। जब खोज ही बंद कर दी जावे तो फिर मिलने का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है ?

हत्यारे की खोज तभी तक होती है जब तक कि हत्या के अपराध में किसी को पकड़ा नहीं जाता। जिसने हत्या नहीं की हो, यदि उसे हत्या के अपराध में पकड़ लिया जाये, सजा दे दी जाये तो असली हत्यारा कभी नहीं पकड़ा जायेगा। क्योंकि अब तो फाइल ही बंद हो गयी। अब तो जगत की दृष्टि में हत्यारा मिल ही गया, उसे सजा भी मिल गयी। अब खोज का क्या काम ? जब खोज बंद हो गयी तो असली हत्यारे का मिलना भी असंभव है।

इसीप्रकार जब सत्यवचन को सत्यधर्म मान लिया गया तो फिर असली सत्यधर्म की खोज का प्रश्न ही कहाँ रहा ? सत्यवचन को सत्यधर्म मान लेने से सबसे बड़ी हानि यह हुई कि सत्यधर्म की खोज खो गयी।

सत्यधर्म क्या है ? यह नहीं जाननेवाले जिज्ञासु कभी न कभी सत्यधर्म को पा लेंगे, क्योंकि उनकी खोज चालू है; पर सत्यवचन को ही सत्यधर्म मानकर बैठ जानेवालों को सत्य पाना संभव नहीं।

अणुव्रत गृहस्थों के होते हैं, मुनियों के नहीं। महाव्रत मुनियों के होते हैं, गृहस्थों के नहीं। इसीप्रकार भाषासमिति और वचनगुप्ति मुनियों के होती हैं, गृहस्थों के नहीं। अणुव्रत, महाव्रत, गुप्ति और समिति गृहस्थों और मुनियों के होते हैं; सिद्धों के नहीं, अविरत सम्यग्दृष्टियों के भी नहीं। जबकि उत्तमक्षमादि दशधर्म अपनी-अपनी भूमिकानुसार अविरत सम्यग्दृष्टियों से लेकर सिद्धों तक पाये जाते हैं।

वाणी पुद्गल की पर्याय है और सत्य है आत्मा का धर्म। आत्मा का धर्म आत्मा में रहता है, शरीर और वाणी में नहीं। जो आत्मा के धर्म हैं, उनका संपूर्ण-धर्मों के धनी सिद्धों में होना अनिवार्य है। उत्तमक्षमादि दशधर्म जिनमें सत्यधर्म भी शामिल है, सिद्धों में विद्यमान हैं; पर उनमें सत्यवचन नहीं है। अत: सिद्ध होता है कि निश्चय से सत्यवचन सत्यधर्म नहीं है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि क्या अणुव्रत-महाव्रत धर्म नहीं ? क्या समिति-गुप्ति भी धर्म नहीं ?

अणुव्रत और महाव्रतों को आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में आस्रवाधिकार में लिया है। यद्यपि उन्हें कहीं-कहीं उपचार से धर्म कहा है पर जो आस्रव हों, बंध के कारण हों; उन्हें निश्चय से धर्म संज्ञा कैसे हो सकती है ?

गुप्ति-समिति भी उत्तमसत्य धर्म नहीं हैं। तात्पर्य यह है कि जिस उत्तमसत्य धर्म की चर्चा यहाँ चल रही है, गुप्ति-समिति वह धर्म नहीं है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुप्ति-समिति आदि के अतिरिक्त पृथक्रूप से दशधर्मों की चर्चा आचार्यों ने की है। यदि सभी को धर्म ही कहना है तो इनको अलग से धर्म कहने का क्या प्रयोजन ? जिस अपेक्षा से इन्हें पृथक् से धर्म कहा है, उसी अपेक्षा से मैं कहना चाहूँगा कि वे सब इन दशधर्मों में से कोई धर्म नहीं हैं। अथवा जिसकी चर्चा चल रही है वह 'सत्यधर्म' वे नहीं हैं। अधिक स्पष्ट कहूँ तो निश्चय से वचन का सत्यधर्म से कोई वास्ता नहीं है। क्योंकि अणुव्रतियों और महाव्रतियों का सत्य बोलना सत्याणुव्रत में और सत्यमहाव्रत में जायेगा। हित-मित-प्रिय बोलना भाषासमिति में तथा नहीं बोलना वचनगुप्ति में समाहित हो जायेगा। अब वचन की ऐसी कोई स्थिति शेष नहीं रहती जिसे सत्यधर्म में डाली जावे।

यदि सत्य बोलने को सत्यधर्म मानें तो सिद्धों के सत्यधर्म नहीं रहेगा, क्योंकि वे सत्य नहीं बोलते। वे बोलते ही नहीं तो फिर सत्य और झूठ का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? क्या सत्यधर्म के धारी को बोलना जरूरी है ? क्या जीवनभर मौन रहनेवाला सत्यधर्म का धारी नहीं हो सकता ?

इससे बचने के लिये यदि यह कहा जाये कि वे सत्य तो नहीं बोलते, पर झूठ भी तो नहीं बोलते; अतः उनके सत्यधर्म है। तो फिर सत्य बोलना सत्यधर्म नहीं रहा, बल्कि झूठ नहीं बोलना सत्यधर्म हुआ। पर यह बात भी तर्क की तुला पर सही नहीं उतरती। क्योंकि यदि झूठ नहीं बोलने को सत्यधर्म मानें तो फिर वचन व्यवहार से रहित एकेन्द्रियादि जीवों को सत्यधर्म का धारी मानना होगा, क्योंकि वे भी कभी झूठ नहीं बोलते। जब वे बोलते ही नहीं तो फिर झूठ

बोलने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? इसप्रकार हम देखते हैं कि न तो सत्य बोलना ही सत्यधर्म है और न झूठ नहीं बोलना ही।

सीधी सी बात यह है जिस सत्यधर्म की चर्चा यहाँ चल रही है, वह न सत्य बोलने में है, न हित-मित-प्रिय बोलने में; वह बोलने के निषेधरूप मौन में भी नहीं। क्योंकि ये सब वाणी के धर्म हैं और विवक्षित सत्यधर्म आत्मा का धर्म है।

जो वास्तविक धर्म हैं, वे पूर्णतः प्रकट हो जाने के बाद समाप्त नहीं होते। उत्तम क्षमादिधर्म सिद्धावस्था में भी रहते हैं, पर अणुव्रत-महाव्रत एक अवस्थाविशेष में ही रहते हैं। वे उस अवस्था के धर्म हो सकते हैं, आत्मा के नहीं। गृहस्थ अणुव्रत ग्रहण करता है, किंतु जब वही गृहस्थ मुनिधर्म अंगीकार करता है तो महाव्रत ग्रहण करता है, अणुव्रत छूट जाते हैं। जो छूट जावे, वह धर्म कैसा ?

अणुव्रत-महाव्रत-गुप्ति-समिति—ये सब पड़ाव हैं, गंतव्य नहीं, प्राप्तव्य नहीं, अंतिम लक्ष्य नहीं। अंतिम लक्ष्य सिद्ध अवस्था है। उसमें भी रहनेवाले उत्तमक्षमादि धर्म जीव के वास्तविक धर्म हैं।

अब हमें उस सत्यधर्म को समझना है जो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक चतुर्गति के सभी मिथ्यादृष्टि जीवों में नहीं पाया जाता एवं सम्यग्दृष्टि से लेकर सिद्धों तक सभी सम्यग्दृष्टि जीवों में अपनी-अपनी भूमिकानुसार पाया जाता है।

द्रव्य का लक्षण सत् है। आत्मा भी एक द्रव्य है, अतः वह सत्स्वभावी है। सत्स्वभावी आत्मा के आश्रय से आत्मा में जो शांतिस्वरूप वीतराग परिणति उत्पन्न होती है, उसे निश्चय से सत्यधर्म कहते हैं। सत्य के साथ लगा 'उत्तम' शब्द मिथ्यात्व के अभाव और सम्यग्दर्शन की सत्ता का सूचक है। मिथ्यात्व के अभाव बिना तो सत्यधर्म की प्राप्ति ही संभव नहीं है।

जब तक यह आत्मा वस्तु का विशेषकर आत्मवस्तु का सत्य स्वरूप नहीं समझेगा, तब तक सत्यधर्म की उत्पत्ति ही संभव नहीं है। जिसकी उत्पत्ति ही न हुई हो उसकी वृद्धि और संवृद्धि का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मवस्तु की सच्ची समझ आत्मानुभव के बिना संभव नहीं है। मिथ्यात्व के अभाव और सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये प्रयोजनभूत अनात्म वस्तुओं का तो

मात्र सत्यज्ञान ही अपेक्षित हैं, किंतु आत्मवस्तु के ज्ञान के साथ-साथ अनुभूति भी आवश्यक है। अनुभूति के बिना सम्यक् आत्मज्ञान संभव नहीं है।

उत्तमसत्य अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित वीतराग भाव। सत्य बोलना तो निश्चय से सत्यधर्म है ही नहीं पर मात्र सत्य जानना, सत्य मानना भी वास्तविक सत्यधर्म नहीं है; क्योंकि मात्र जानना और मानना क्रमशः ज्ञान और श्रद्धा गुण की पर्यायें हैं; जबकि सत्यधर्म चारित्र गुण की पर्याय हैं, चारित्र की दशा है। उत्तमक्षमादि दशधर्म चारित्ररूप हैं - यह बात दशधर्मों की सामान्य चर्चा में अच्छी तरह स्पष्ट की जा चुकी है।

अतः सत्यवाणी की बात तो दूर, मात्र सच्ची श्रद्धा और सच्ची समझ भी सत्यधर्म नहीं; किंतु सच्ची श्रद्धा और सच्ची समझपूर्वक उत्पन्न हुई वीतराग परिणति ही निश्चय से उत्तमसत्य धर्म है।

नियम नाम चारित्र का है। नियम की व्याख्या करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द नियमसार में लिखते हैं-

सुहअसुहवयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा।
अप्पाणां जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा॥१२०॥

शुभाशुभ वचन-रचना का और रागादि भावों का निवारण करके जो आत्मा को ध्याता है, उसे नियम से (निश्चितरूप से) नियम होता है।

यहाँ भी चारित्ररूप धर्म को वाणी (शुभाशुभ वचन-रचना) और रागादि भावों के अभावरूप कहा है। सत्यधर्म भी चारित्र का एक भेद है। अतः वह भी वाणी और रागादि भावों के अभावरूप होना चाहिये। **[उत्तरार्द्ध अगले अंक में]**

दृष्टि की डोरी चैतन्य से बाँध दे

सम्माननीय पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन का चौसठवाँ जन्मदिवस भाद्रपद कृष्णा द्वितीया दिनांक ३०-८-१९७७ को है।

इस अवसर पर उनके द्वारा समय-समय पर अभिव्यक्त प्रेरणापद विचार-बिंदुओं में से ६४ विचार-बिंदु आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं।

१. गुरु के हितकारी उपदेशों के तीक्ष्ण प्रहारों से सच्चे मुमुक्षु का आत्मा जाग उठता है और ज्ञायक की रुचि प्रगट होती है। बारंबार चेतन की ओर—ज्ञायक की ओर झुकाव होता है। जैसे—भक्त को मुश्किल से भगवान मिले हों तो वह उन्हें छोड़ना नहीं चाहता; उसीप्रकार 'हे चेतन! हे ज्ञायक!'—ऐसा घोलन बार-बार होता रहता है, उसी ओर की रुचि रहती है।

२. जिस समय ज्ञानी की परिणति बाहर दिखती है, उसी समय उसकी दृष्टि में ज्ञायक भिन्न रहता है। जैसे—किसी को पड़ोसी के साथ घनिष्ठ मित्रता हो, उसके घर आता-जाता हो, परंतु वह पड़ोसी को अपना नहीं मान लेता; उसीप्रकार ज्ञानी को कभी विभाव में एकत्व परिणमन नहीं होता, ज्ञानी सदा कमल के समान निर्लेप रहता है, विभाव से भिन्नपने ऊपर तैरता रहता है।

३. ज्ञानी को तो ऐसी भावना होती है कि अभी पुरुषार्थ हो तो तुरंत मुनि होकर केवलज्ञान प्राप्त करे। बाहर आना पड़ता है वह तो अपनी कमजोरी के कारण है।

४. सम्यग्दर्शन होते ही जीव चैतन्यमहल का मालिक बन गया। तीव्र पुरुषार्थी को चैतन्य महल के अस्थिरतारूप कचरे को साफ करने में थोड़ा समय लगता है और मंद पुरुषार्थी को अधिक समय लगता है। परंतु दोनों सारा कचरा साफ करके केवलज्ञान अवश्य ही प्राप्त करेंगे।

५. ज्ञानी को 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखंडित रहती है। वह बाहर के भक्ति, शास्त्र-स्वाध्याय आदि प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेता हुआ दिखता है; पर उसकी ज्ञायक धारा तो अखंडितरूप से अंदर कार्य करती रहती है।

६. जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं; वैसे ही चैतन्य की महिमा और संसार की महिमा–दोनों साथ नहीं रह सकतीं। कितने ही जीवों को मात्र क्षणिक वैराग्य होता है कि 'संसार अनित्य है, अशरण है'—उन्हें चैतन्य की समीपता नहीं होती। जिसको चैतन्य की अपूर्वता लगने से संसार की महिमा छूट जाती है, वह चैतन्य के समीप आता है। चैतन्य कोई अपूर्व चीज है, उसकी पहचान करना चाहिये, उसकी महिमा करना चाहिये।

७. ज्ञानी की दृष्टि द्रव्यसामान्य के ऊपर ही पड़ी रहती है। उसके भीतर भेद–ज्ञान की धारा सतत बहती रहती है।

८. निर्विकल्प दशा में 'यह ध्यान है', 'यह ध्येय है'; ऐसे विकल्प नहीं होते। यद्यपि सविकल्प दशा में भी ज्ञानी की दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है; तो भी पंचपरमेष्ठी संबंधी, ध्याता–ध्यान–ध्येय संबंधी विकल्प भी होते हैं। परंतु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्प जाल टूट जाते हैं; शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। उग्र निर्विकल्प दशा में ही मुक्ति है।

९. चैतन्य की शोभा देखने के लिये ज्ञानी कुतूहल बुद्धिवाले होते हैं। अहो! उन परम पुरुषार्थी महाज्ञानियों की दशा कैसी होगी कि अंदर गये तो बाहर आते ही नहीं। धन्य वह दिवस कि जब बाहर आना ही न पड़े।

१०. ज्ञानी की दृष्टि अखंड चैतन्य में भेद नहीं करती। साथ का ज्ञान विवेक करता है कि यह चैतन्यभाव है, यह परभाव है। इतनी प्रगति हुई, इतनी कचाश है; ऐसा परिणाम दृष्टि नहीं करती, ऐसा विवेक ज्ञान करता है।

११. जिसने भेदज्ञान की विशेषता प्रगट की है, वह चाहे जैसे परीषहों में भी आत्मा का आश्रय नहीं छोड़ता।

१२. द्रव्य में उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य सब होते हुए भी द्रव्य और पर्याय दोनों समान कोटि में नहीं। द्रव्य की कोटि ऊँची ही है, पर्याय की कोटि नीची ही है। द्रव्यदृष्टिवाले को अंदर में इतना अधिक रस–कसवाला आत्मतत्त्व दिखता है कि दृष्टि पर्याय में चोंटती ही नहीं। भले अनुभूति हो, पर दृष्टि अनुभूतिरूप पर्याय में चोंटती नहीं। अहो! ऐसा

आश्चर्यकारी द्रव्यस्वभाव प्रगट हुआ अर्थात् अनुभव में आया – ऐसा ज्ञान जानता है, परंतु दृष्टि तो शाश्वत स्तंभ पर – द्रव्यस्वभाव पर जमी तो जमी ही रहती है।

१३. **साधक जीव को अनेक गुणों की निर्मल पर्यायें प्रगट हो जाती हैं। जैसे – नंदनवन में अनेक वृक्षों के विविध प्रकार के पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं; उसीप्रकार साधक आत्मा के चैतन्यरूपी नंदनवन में अनेक गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं।**

१४. गुरु तेरे गुणों को विकसित करने की कला सिखाते हैं। गुरु-आज्ञा में रहना तो परम सुख है। कर्मजनित विभाव में जीव दब रहा है। गुरु-आज्ञा में रहने से कर्म सहज दब जाते हैं और गुण प्रगट हो जाते हैं।

१५. **मुनिराज असंगपने आत्मसाधना करते हैं, स्वरूप-गुप्त हो गये हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनियों का भावलिंग है।**

१६. संसार से भयभीत जीवों को किसी भी प्रकार से आत्मार्थ पुष्ट हो, ऐसा उपदेश गुरु देते हैं। शिष्य गुरु का आशय समझने का प्रयत्न करता है। गुरु की किसी भी बात में उसे शंका नहीं होती कि गुरु यह क्या कहते हैं ? वह विचारता है कि गुरु कहते हैं वह तो सत्य है। मैं समझ नहीं सकता, यह मेरी समझ का ही दोष है।

१७. **मुनियों ने सभी विभावों को जीतकर प्रव्रज्यारूपी साम्राज्य प्राप्त किया है। विजयध्वज लहरा रहा है।**

१८. मुनिराज बारंबार आत्मा में ही आत्मा के उपयोग की प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी दशा निराली, पर के प्रतिबंध से रहित, केवल ज्ञायक में प्रतिबद्ध, मात्र निजगुणों में ही रमणशील, निरालंबी होती है। मुनिराज ने मोक्षपथ में जो प्रयाण चालू किया, उसे पूरा करते हैं।

१९. **शुद्धात्मा का स्वरूप बताते हुए गुरु के अनुभवपूर्वक निकले वचन रामबाण जैसे हैं; जिनसे मोह भाग जाता है और शुद्धात्मतत्त्व प्रकाशित होता है।**

२०. अहो! आत्मा अलौकिक चैतन्यचंद्र है, जिसका अवलोकन करते ही मुनियों को वैराग्य उछलता है। मुनिराज तो शीतल-शीतल चैतन्यचंद्र को देखते अघाते नहीं, थकते ही नहीं।

२१. **हे जीव! तुझे कहीं अच्छा न लगता हो तो अपना उपयोग पलट कर आत्मा में लगा। आत्मा में अच्छा लगेगा, क्योंकि उसमें आनंद भरा है। जगत में कहीं अच्छा लगे ऐसा नहीं है; परंतु एक आत्मा में जरूर अच्छा लगेगा।**

२२. पर से विरक्ति नहीं, विभाव की तुच्छता नहीं लगती, अंदर इतनी तालाबेली (तड़प) नहीं; कार्य कहाँ से हो? अंदर तालाबेली जागे तो कार्य हुए बिना रहे नहीं। स्वयं आलसी हो गया है। करूँगा-करूँगा कहता है, परंतु करता नहीं है। कोई ऐसा आलसी होता है कि सोकर उठा हो तो बैठने का मन नहीं करता और बैठा हो तो खड़े होने का मन नहीं करता। उसीप्रकार तालाबेलीरहित आलसी जीव कल करूँगा-कल करूँगा ऐसा मंदपने रहता है, वहाँ कल की आज नहीं होती और जीवन पूरा हो जाता है।

२३. **एक-एक दोष को ढूँढ़-ढूँढ़कर नहीं निकालना पड़ता। अंतर्दृष्टि करे तो गुणरत्नाकर प्रगटे और सभी दोष भस्म हो जाएँ। आत्मा तो अनादि अनंत गुणों का पिंड है।**

२४. जैसे - किसी को ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के शिखर पर तीव्र गर्मी लगती हो और तीव्र प्यास लगी हो, उस समय पानी की एक बूँद की ओर भी उसका लक्ष्य जाता है और वह उसे पाने के लिये दौड़ता है; उसीप्रकार जिस जीव को संसार का ताप लगा हो और सत् की तीव्र पिपासा जगी हो वह सत् की प्राप्ति के लिये उग्र प्रयत्न करता है। वह आत्मार्थी जीव ज्ञानलक्षण द्वारा ज्ञायक आत्मा की प्रतीति करके अंदर से उसके अस्तित्व को ख्याल में ले तो उसका ज्ञायकतत्त्व प्रगट होता है।

२५. **अपनी जिज्ञासा ही मार्ग शोधती है। शास्त्र साधन हैं; परंतु मार्ग तो अपने से ही ज्ञात होता है। अपनी गहरी तीव्ररुचि और सूक्ष्म उपयोग से मार्ग ज्ञात होता है।**

२६. रुचि रखना। रुचि ही काम करती है। पूज्य गुरुदेव ने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकार से समझाते हैं। उनके वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते जाना। भेद-ज्ञान के लिये तीखी रुचि ही काम करती है। ज्ञायक-ज्ञायक-ज्ञायक—इसी की रुचि हो तो पुरुषार्थ हुए बिना नहीं रहता।

२७. **सम्यक्त्व के पहले भी विचार द्वारा निर्णय हो सकता है। 'यह आत्मा है'—ऐसा पक्का निर्णय होता है। भले अभी अनुभूति नहीं हुई, तो भी पहले विकल्पसहित निर्णय अवश्य होता है।**

२८. एकदम पुरुषार्थ करके अपने चैतन्य स्वभाव की गहराई में उतर जा। कहीं रुकना नहीं। अंदर से खटक न जाये जब तक वीतराग दशा प्रगट नहीं होती। बाहुबलीजी को भी एक विकल्प में रुकने से वीतराग दशा प्रगट नहीं हुई। जैसे – आँख में एक कण भी नहीं समाता; उसीप्रकार आत्मस्वभाव में एक अणुमात्र भी विभाव नहीं पोसाता। जब तक संज्वलन कषाय का अबुद्धिपूर्वक अति सूक्ष्म अंश भी विद्यमान हो तब तक पूर्णज्ञान केवलज्ञान प्रगट नहीं होता।

२९. **गहरी लगन से पुरुषार्थ करे तो वस्तु मिले बिना नहीं रहती। अनादि काल से लगनी लगी ही नहीं। लगनी लगे तो ज्ञान और आनंद प्रगट हो ही।**

३०. जिसको जिसका तन्मयपने से रस होता है, उसे वह भूलता नहीं। सोते समय भी शरीर के नाम से बुलाने पर जवाब देता है, क्योंकि शरीर के साथ तन्मयता की मान्यता का अभ्यास अनादि से है। अनभ्यस्त ज्ञायक में जाने के लिये सूक्ष्म होना पड़ता है, धैर्यवान होना पड़ता है, स्थिर होना पड़ता है – जो कठिन लगता है। बाहर के कार्यों का अभ्यास है, इसलिये सरल लगते हैं। परंतु जब करे तब यही करना है।

३१. **शुद्ध तत्त्व की दृष्टि प्रगट की, वह नौका में बैठ गया और पार हो गया।**

३२. विचार, मंथन, सब विकल्परूप ही हैं। उनसे भिन्न विकल्पातीत एक शाश्वत् ज्ञायकतत्त्व–वह आत्मा है। 'यह विकल्प तोड़ूँ–यह विकल्प तोड़ूँ, यह भी विकल्प ही है; उनसे भी पार चैतन्यपदार्थ भिन्न ही है। उसका अस्तित्व ख्याल में आये; मैं भिन्न, ज्ञायक भिन्न, ऐसा निरंतर घोलन रहे, यह भी अच्छा है। पुरुषार्थ की उग्रता और उसप्रकार का प्रारंभ हो तो मार्ग मिले ही। पहले विकल्प नहीं टूटता, परंतु पहले पक्का निर्णय होता है।

३३. **सचमुच में जिसे स्वभाव रुचता है, अंदर की जागृति होती है, उसे बाहर आना अच्छा नहीं लगता। स्वभाव शांति और निवृत्तिरूप है, शुभाशुभ विभावभावों में आकुलता और प्रवृत्ति है – उन दोनों का मेल नहीं होता।**

३४. जिसे जिसकी रुचि हो उसे वही सुहाता है, बाकी सब बोझा लगता है। जिसे यह समझने की रुचि है, उसे दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कल करूँगा – ऐसा वायदा नहीं होता। अंदर चिंतन चलता ही रहता है और ऐसा लगता है कि मुझे अभी करना है।

३५. चैतन्य की गहरी भावना तो अन्य भव में भी चैतन्य के साथ ही जाती है। आत्मा तो शाश्वत् पदार्थ है। ऊपरी विचारों में नहीं, परंतु अंदर में घोलन करके तत्त्वविचारपूर्वक गहरे संस्कार डाले होंगे वे साथ जाऐंगे।

३६. अंदर उपयोग जाता है, तब सभी नयपक्ष छूट जाते हैं। आत्मा जैसा है वैसा अनुभव में आता है। जैसे – गुफा में जाते समय प्रवेश-द्वार तक ही वाहन आता है, फिर अकेले ही अंदर आना पड़ता है। सभी भेद-वाद छूट जाते हैं। जानने के लिये – यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह विभाव है, यह कर्म है, यह नय है; परंतु जब अंदर जाता है तो सभी छूट जाता है। एक-एक विकल्प छोड़ना चाहे तो कुछ नहीं छूट सकता, अंदर जाये तो सब छूट जाता है।

३७. दृष्टि और ज्ञान यथार्थ कर। तू स्वयं को भूल गया है, और दिखानेवाले गुरु मिले तो तुझे उनकी दरकार नहीं है। जीव को रुचि हो तो गुरुवचनों का विचार करे, स्वीकार करे और आत्मा को पहिचाने।

३८. अपनी दृष्टि की डोरी चैतन्य से बाँध दे। आकाश में पतंग उड़ाते हैं, पर डोरी हाथ में होती है। उसीप्रकार डोरी चैतन्य में बाँध दे, चाहे फिर उपयोग बाहर जाए। अनादि अनंत अद्‌भुत आत्मा का, परम पारिणामिक अखंड एक भाव का अवलंबन कर। गुरु की वाणी प्रबल निमित्त है, पर समझकर आश्रय तो स्वयं को ही करना है।

३९. ध्यान – वह साधक का कर्त्तव्य है। पर यदि वह तुझसे न हो सके तो श्रद्धा तो बराबर करना ही। तुझमें अगाध शक्ति भरी है। उसका यथार्थ श्रद्धान तो अवश्य करने योग्य है।

४०. तू स्वयं तो मार्ग जानता नहीं और जाननेवाले को साथ नहीं रखता तो तू एक कदम भी कैसे रखेगा ? तू स्वयं अंध और यदि गुरुवाणी तथा श्रुत का अवलंबन न रखे तो साधक

के अंतर का मार्ग तुझे कैसे सूझेगा ? सम्यक्त्व कैसे होगा ? साधकदशा कैसे आयेगी ? केवलज्ञान कैसे प्रगट होगा ?

४१. पहले ध्यान सच्चा नहीं होता, ज्ञान सच्चा होता है। यह शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि सभी भावों से मैं भिन्न हूँ। विभाव होते हैं वह मैं नहीं। उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शुभभाव भी मैं नहीं। सबसे भिन्न मैं ज्ञायक हूँ।

४२. अनंत काल का अपरिचित मार्ग गुरुवाणी और आगम बिना ज्ञात नहीं होता। सच्चा निर्णय तो स्वयं ही करना है, परंतु वह गुरुवाणी और आगम के अवलंबन से होता है। सच्चे निर्णय बिना, सच्चे ज्ञान बिना, सच्चा ध्यान नहीं हो सकता। इसलिये तू श्रुत के अवलंबन को, श्रुत के चिंतवन को साथ ही रखना।

४३. दृढ़ प्रतीति करके सूक्ष्म उपयोगवाला होकर द्रव्य की गहराई में उतर जा। द्रव्य के पाताल में जा। वहाँ से तुझे शांति और आनंद मिलेगा। खूब धैर्य रखकर द्रव्य का तल स्पर्श कर।

४४. निरालंबन परिणमना वस्तु का स्वभाव है। तू किसी के आश्रय बिना चैतन्य में चला जा। आत्मा सदा अकेला ही है, स्वयंभू है। मुनियों के मन की गति निरालंबी है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निरालंबी चाल प्रगट हुई, उसे कोई रोकनेवाला नहीं।

४५. गुरु की वाणी से जिसका हृदय भर गया है और जिसे आत्मा की लगन लगी है, उसका मन और कहीं नहीं लगता। उसे एक परमात्मा ही चाहिये और कुछ नहीं।

४६. शुभाशुभ भाव और ज्ञान की सूक्ष्म अंत:संधि में प्रज्ञाछैनी पटकना। उपयोग को बराबर सूक्ष्म करके उन दोनों की संधि में सावधान होकर प्रहार करना। सावधान होकर अर्थात् बराबर सूक्ष्म उपयोग करके, लक्षण द्वारा बराबर पहचान करके।

४७. भगवान की आज्ञा के बाहर कदम रखेगा तो डूब जायेगा। अनेकांत का ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी।

४८. जीव को अटकने के जो अनेक स्थान हैं, उन सबसे पीछे हटकर मात्र चैतन्य दरबार में ही उपयोग लगा दे। निश्चित ही प्राप्ति होगी। अनंत-अनंत काल से अनंत जीवों ने इसी प्रकार पुरुषार्थ किया है, अत: तू भी ऐसा कर। अनंत काल गया, जीव कहीं न कहीं

अटका ही है न ? अटकने के स्थान अनेक हैं और सफल होने का एक ही प्रकार है – चैतन्य दरबार में जाना। स्वयं कहाँ अटकता है, वह यदि स्वयं ख्याल करे तो बराबर जान सकता है।

४९. पर्याय पर से दृष्टि हटाकर द्रव्य पर दृष्टि दे तो मार्ग मिलता ही है। जिसे लगन लगी हो उसका पुरुषार्थ शुरु हुए बिना नहीं रहता। अंदर से अरुचि हो, थकान हो, सचमुच में थक जाए तो पीछे हटे बिना नहीं रहता।

५०. सबको एक ही काम करना है – प्रतिक्षण आत्मा को ही ऊर्ध्व रखना, आत्मा की ही प्रमुखता रखना। जिज्ञासा की भूमिका में भी आत्मा को ही अधिक रखने का अभ्यास करना।

५१. श्रवण योग हो तो तत्काल बोधक गुरुवाणी में और स्वाध्याय योग हो तो नित्यबोधक ऐसे शास्त्रों में प्रवर्तन रखना। उसके अतिरिक्त-काल में भी गुरुवाणी और आगम में बताये गये भगवान आत्मा का विचार और मंथन रखना।

५२. मुमुक्षु जीव शुभ में प्रवर्ते, परंतु उसकी शोधकवृत्ति चली नहीं जाती। सत्यस्वरूप की शोध चालू रहे, इसप्रकार प्रवर्तता है। शुद्धता का ध्येय छोड़कर शुभ का आग्रह नहीं रखता। और वह 'मैं शुद्ध हूँ-मैं शुद्ध हूँ', ऐसा करके पर्याय की अशुद्धता भूल नहीं जाता, शुष्क ज्ञानी नहीं हो जाता; हृदय को द्रवित रखता है।

५३. संसार में सचमुच में थके हुए जीव को ही सम्यग्दर्शन होता है। वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में रखे बिना, उसे ग्रहण किये बिना, किसके आश्रय से ध्यान होगा ? किसमें एकाग्र होगा ?

५४. संसार की अनेक अभिलाषारूप क्षुधा से दुखित मुसाफिर ! तू विषयों में क्या झांकता है। वहाँ तेरी भूख नहीं मिटेगी। अंदर अमृतफलों का चैतन्य वृक्ष पड़ा है, उसे देख तो तुझे अनेक जाति के मधुर फल और रस मिलेगा। तू तृप्त-तृप्त हो जाएगा।

५५. जिसे चैतन्य देव की महिमा नहीं उसे अंदर निवास करना दुर्लभ है।

५६. चैतन्यद्रव्य पूर्ण निरोग है। पर्याय में रोग है। शुद्ध चैतन्य की भावना ऐसी उत्तम औषधि है कि पर्याय का रोग चला जाये। शुद्ध चैतन्यभावना शुद्ध परिणमन है, शुभाशुभ

परिणमन नहीं। उससे अवश्य ही संसार रोग मिटता है। वीतरागी देव और गुरु के वचनामृतों का हार्द समझकर शुद्ध चैतन्यभावनारूप उपादान-औषधि का सेवन करने से भव रोग टलता है। इसलिये वीतराग के वचनामृत को भव रोग का निमित्त औषधि कहा गया है।

५७. तत्त्व का उपदेश असिधारा जैसा है। तदनुसार परिणमने पर मोह नहीं रह सकता।

५८. परिभ्रमण करते हुए अनंतकाल बीत गया। उस अनंतकाल में जीव ने 'आत्मा का हित करना है'—ऐसी भावना तो की, परंतु तत्त्वरुचि और तत्त्वमंथन नहीं किया। एक आत्मा की ही रुचि हो – ऐसा जीवन बना लेना चाहिये।

५९. ज्ञायक परिणति का दृढ़ अभ्यास कर। शुभभाव के कर्तृत्व में भी सारे लोक का कर्तृत्व समाया है।

६०. तुझे यदि अपना परिभ्रमण टालना हो तो अपने द्रव्य को तीक्ष्ण बुद्धि से पहचान ले। यदि तेरे हाथ में द्रव्य आ गया तो मुक्ति की पर्याय सहज मिल जायेगी।

६१. चाहे जितनी प्रतिकूलता में भी ज्ञान ध्यान का समय निकाल लेना। यह अमूल्य जीवन चला जा रहा है। इसे व्यर्थ नहीं जाने देना।

६२. अपने अगाध गंभीर ज्ञायकस्वभाव को पूर्णतया जानने पर भूत-भविष्य की पर्यायसहित संपूर्ण लोकालोक ज्ञात हो जाता है। अधिक जानने की आकांक्षा से बस हो! स्वरूप निश्चल ही रहना योग्य है।

६३. द्रव्य तो सूक्ष्म है, उसे पकड़ने के लिये सूक्ष्म उपयोग कर। पाताल-कुँए के समान द्रव्य की गहराई में उतर जा तो अंदर से विभूति प्रगट हो। द्रव्य आश्चर्यकारी है।

६४. अपनी महिमा ही अपने को तारेगी। बाह्य भक्ति-महिमा से नहीं, पर चैतन्य की परिणति में चैतन्य की निज महिमा से तरेंगे। चैतन्य के महिमावंत को भगवान की सच्ची महिमा होती है अथवा भगवान की महिमा समझना निज चैतन्यमहिमा समझने में निमित्त होती है। ●●

जिनवचसि रमन्ते

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत आत्मख्याति टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा ११-१२ की टीका में समागत कलश नं० ४ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके जिनवचसि रमंते ये स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चैरनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एवं॥४॥

निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों में विषय के भेद से परस्पर विरोध है। इस विरोध को नष्ट करनेवाले स्यात्पद से चिह्नित जिनभगवान के वचनों में जो पुरुष रमते हैं (प्रचुर प्रीतिसहित अभ्यास करते हैं), वे पुरुष अपने आप (अन्य कारण बिना) मिथ्यात्व कर्म के उदय को वमन करके इस अतिशयरूप परम ज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को तुरंत देखते हैं। कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा? नवीन उत्पन्न नहीं हुआ, पहले कर्म से आच्छादित था, वह प्रगट व्यक्तिरूप हो गया है। और कैसा है? सर्वथा एकांतरूप कुनय के पक्षों से खंडित नहीं होता। निर्बाध है।

इस कलश में - ११वीं और १२वीं गाथा में निश्चय और व्यवहार की अविरोध संधि किसप्रकार है - यह दिखाया गया है।

निश्चय का विषय अभेद है और व्यवहार का विषय भेद है। सम्यग्ज्ञान का एक अंश निश्चय अभेद को देखता है और दूसरा अंश भेद को देखता है। दोनों के विषयों में विरोध होते हुए भी वे वस्तु को निपजाते हैं। द्रव्य त्रिकाल है और पर्याय क्षणिक है। दोनों धर्मों में विरोध होते हुए भी दोनों मिलकर वस्तु-प्रमाण होते हैं। ऐसी स्याद्वादवाणी द्वारा जो जीव शास्त्रों के भावों में रमते हैं, उन्हें निजस्वभाव की प्राप्ति होती है।

यदि व्यवहारनय की विषयभूत अवस्था न हो तो तू रागादि दूर करके निर्मल हो, भ्रांति

छोड़कर सम्यग्ज्ञानी हो ऐसा उपदेश मिथ्या ठहरेगा। संसार अवस्था के काल में भी त्रिकाली वस्तु-स्वभाव की दृष्टि से आत्मा में शुद्धता ही है, और वर्तमान पर्याय की अपेक्षा पर के संबंध से अशुद्धता ही है। सर्वज्ञ भगवान ने वस्तु का वर्णन जिस अपेक्षा से किया है उसीप्रकार जानने पर मोह का नाश अवश्य होता है। यह बात समझने के लिये प्रेम से ध्यानपूर्वक सुननेवाले को उत्कृष्ट पुण्य बँधता है और जो समझेगा वह तो निहाल हो जायेगा।

स्यात्पद से चिह्नित श्री जिनभगवान का वचन अनेक धर्मस्वरूप स्वतंत्र आत्मवस्तु को पर से भिन्न और अपने अनंत ज्ञानादि गुणों और पर्यायों से अभिन्न बताता है। नित्य अभेद वस्तु-स्वभाव को मुख्य कहें तब अनित्य अवस्था का लक्ष्य गौण समझना। इसप्रकार दो अपेक्षाओं से अविरुद्ध वस्तु को सर्वज्ञ वीतराग की स्याद्वाद वाणी बताती है।

मिथ्या व्यवहार की बात तो घर-घर सुनने को मिलती है। मैं पुण्य-पाप का कर्ता हूँ, शुभराग से लाभ होगा, हम शरीरादि की क्रिया और दूसरों का भला-बुरा कर सकते हैं; ऐसा मिथ्या व्यवहार सीखना नहीं पड़ता, उसका तो अनादि से परिचय है परंतु मैं चैतन्य आनंदस्वरूप ध्रुव हूँ, विकार या पर का कर्ता नहीं, मलिन अवस्थारूप मेरा स्वभाव नहीं, ऐसा जानकर भेद को गौण करके यथार्थ शुद्धदृष्टि के विषय का ज्ञान करानेवाले बहुत कम हैं।

निश्चय-व्यवहार के अविरोधी पक्षों का ज्ञान करके सर्वज्ञ के न्याय-वचनों से यथार्थ तत्त्व का जो बारंबार अभ्यास करते हैं, उनका मिथ्यात्वरूप मोह स्वयं नष्ट हो जाता है। अखंड स्वभाव में वास्तविक रुचि से एकाग्र होने पर विपरीत श्रद्धा का निमित्तकारण दर्शनमोह स्वयं नष्ट हो जाता है।

जिनवचन कथंचित् सत्-असत्रूप, एक-अनेकरूप, नित्य-अनित्यरूप, भेद-अभेदरूप, शुद्ध-अशुद्धरूप; जैसी वस्तु विद्यमान है वैसा कहकर विरोध मिटाता है, झूठी कल्पना नहीं करता।

त्रिकाल स्वभाव को मुख्य करनेवाला द्रव्यार्थिकनय है और पर्याय को ख्याल में लेनेवाला पर्यायार्थिकनय है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को प्रयोजनवश मुख्य करके निश्चय कहते हैं। द्रव्य में ध्रुव और पर्याय ऐसे दो अंश हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये द्रव्यार्थिकनय का

अवलंबन होता है, दोनों नयों का नहीं। पर्याय के अवलंबन से सम्यग्दर्शन नहीं होता। द्रव्यसामान्य अंश और पर्याय अंश दोनों निश्चय हैं। पर्याय भी निश्चय है और विभाव भी निश्चय है। द्रव्य स्वयं गुणी है और पर्याय भी अपनी है, परंतु द्रव्यार्थिकनय को मुख्य करके निश्चय कहते हैं।

आत्मा एक समय में परिपूर्ण ज्ञानानंदस्वभावी है, उसी समय पर्याय में रागादि भेद हैं। दोनों एक समय में होते हुए भी पर्याय-भेद को मुख्य करने से धर्म नहीं होता। पर्याय, राग या विकल्पादिरूप - स्वद्रव्य परिणमित होने पर भी उनके आश्रय से धर्म नहीं होता; अतः उन्हें गौण किया है और शुद्ध ज्ञायकस्वभाव को मुख्य किया है। क्षयोपशमिक ज्ञान, वीर्य और शुभराग स्वाश्रित हैं; अतः निश्चय होते हुए भी उनके आधार से धर्म नहीं होता। अतः जिसे धर्म करना हो उसे पर्याय को गौण करके त्रिकाली ध्रुवअंश को मुख्य करना चाहिये।

जगत के पदार्थ असहायरूप परिणमते हैं, कोई किसी के आधार से नहीं परिणमता। उपदेश मिला इसलिए धर्म हुआ - ऐसा नहीं। फिर भी धर्म प्राप्ति में ज्ञानी की देशनालब्धि ही निमित्त होती है। निमित्त की राह नहीं देखनी पड़ती और निमित्त आता है इसलिये सम्यग्दर्शन होता है - ऐसा नहीं है। उपादान में निमित्त का अभाव है। प्रवचनसार गाथा ९९ में कहते हैं कि जो पर्याय पहली वह पहली और जो दूसरी है वह दूसरी। आगे पीछे नहीं होती। पूर्व पर्याय का वर्तमान पर्याय में अभाव है। वर्तमान पर्याय निरपेक्ष सिद्ध करके निमित्त सापेक्षता की बात है।

सामान्य और विशेष दोनों स्वतंत्र हैं। आप्तमीमांसा में सापेक्ष-निरपेक्ष का प्रकरण किया है। धर्मी आत्मा सामान्य और पर्याय विशेष है। सामान्य से विशेष नहीं। प्रवचनसार गाथा १७२ में कहा है कि आत्मा की पर्याय सामान्यद्रव्य को स्पर्शती नहीं। यदि पर्याय द्रव्य को स्पर्शे तो सामान्य-विशेष दोनों का नाश हो जाए। सामान्य और विशेष दोनों का अस्तित्व है, परंतु परस्पर स्पर्श किये बिना स्वतंत्र और निरपेक्ष है।

कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा? नवीन उत्पन्न नहीं हुआ। प्राप्त की ही प्राप्ति है। अखंड स्वभाव के लक्ष्य से स्ववस्तु में से श्रद्धा, ज्ञान और आनंद की प्राप्ति होती है।

और कैसा है शुद्ध आत्मा? सर्वथा एकांतरूप कुनय के पक्ष से खंडित नहीं होता,

निर्बाध है। सर्वथा एक पक्ष से आत्मा को नित्य कूटस्थ ही माने तो राग-द्वेष की विकारी अवस्था नहीं बदल सकती। सर्वथा क्षणिक मानने पर पाप का भय नहीं रहेगा, स्वच्छंदता और नास्तिकता हो जायेगी। अतः द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से नित्य शुद्ध अखंड वस्तुरूप जाने और व्यवहार दृष्टि से भेदरूप अवस्था जाने। इसप्रकार आत्मा का यथार्थ भान होने से एकांत पक्ष का खंडन हो सकता है।

लोकोत्तर पात्रता बिना अंतर के सूक्ष्म भाव समझ में नहीं आ पाते और वस्तु का बहुमान नहीं आता। अनंत काल से परमतत्त्व का संग और परिचय नहीं किया और मुश्किल से तत्त्व समझने का काल आया तो सामाजिक-लौकिक मोह के वशीभूत होने से उसकी प्रीति नहीं की।

जन्म-मरण कैसे दूर हो ? उसकी दरकार करके अपना हित करने का समय है। सबको इकट्ठा करने या पर में रुकने का समय नहीं है। यह परम अध्यात्म का विषय है, इसमें बहुत ध्यान रखना चाहिए। तत्त्व का परिचय करने के लिये सब कुछ भूलकर अत्यंत निवृत्ति लेना चाहिये। तत्त्व की भाषा अत्यंत गूढ़ और भाव अत्यंत गंभीर होते हैं। यथार्थ पात्रता बिना यथार्थ समझ नहीं होती और वस्तु की महिमा नहीं आती।

आचार्यदेव कहते हैं कि इन ११वीं और १२वीं गाथा में जिस अपेक्षा जो कहा है, उसे समझकर अखंड ज्ञानानंद स्वभाव को मुख्य करके भेदरूप व्यवहार को गौण करेगा उसका विरोधरूप संसार नष्ट हो जायेगा। ●●

जहाँ रुचि वहाँ मन

ज्ञानियों को ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा को छोड़कर अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती, अतः परमात्मा को जाननेवाले ज्ञानियों का मन बाह्य विषयों में नहीं रमता। और जिन्हें राग की रुचि है, उनका मन परमानंद देनेवाले परमात्मा में नहीं लगता, वे जीव कदाचित् बाह्य त्याग कर संयम धारें, तो भी राग की रुचिवाली अंतरंग अभिलाषा छूटी न होने से षट्काय जीव के घातक ही हैं। बाह्य विषयों को छोड़ते हुए भी अंतरंग से छूटे न होने से विषयसेवक ही हैं। - पूज्य स्वामीजी

मोक्ष और मोक्ष का उपाय

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की चतुर्थ गाथा पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

णियमं मोक्खउवायो तस्स फलं हवति परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्ह पि य पत्तेयपरूवणा होई॥४॥

रत्नत्रयरूप नियम मोक्ष का उपाय है; उसका फल परम-निर्वाण है। इन तीनों का भेद करके भिन्न-भिन्न निरूपण होता है।

तीन गाथायें पूर्ण हो गयीं। अब चौथी गाथा में रत्नत्रय के भेद और लक्षण के विषय में कहते हैं।

रत्नत्रय स्वरूप नियम मोक्ष का उपाय है। आनंदकंद आत्मा की प्रतीति, ज्ञान और रमणता मोक्ष का उपाय है। उसका नाम नियम है। शुद्धात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य को अपनी श्रद्धा में न मानने का नियम लेना सम्यग्दर्शन है। मैं परिपूर्ण परमात्मा हूँ, इसके विपरीत अपूर्ण या विकारी मैं नहीं हूँ, ऐसा मानना प्रथम सम्यग्दर्शन का नियम है। शुद्ध चैतन्य के अतिरिक्त पुण्य-पाप को अथवा शरीर की क्रिया को अपनी न मानना वह मोक्षमार्ग का मूल नियम है। बाहर में यह चलेगा, यह नहीं चलेगा—यह तो राग है, यह मेरा स्वरूप नहीं है। स्वभावसन्मुख होकर चिदानंद आत्मा का स्वरूप जानना, मानना और उसमें स्थिर होना, वही नियम है और वही मोक्ष का उपाय है।

ऐसे नियम का फल क्या है? परम निर्वाण वह उसका फल है। पुनश्च, रत्नत्रय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का भिन्न-भिन्न निरूपण भी होता है। आत्मा में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अभेद हैं; किंतु भेद द्वारा वह अभेद समझाने के लिये दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद करके भी कहने में आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों के भिन्न-भिन्न लक्षण कहेंगे, किंतु वह तीनों आत्मा से भिन्न नहीं हैं।

रतनत्रय के भेद करने और उनके लक्षण के विषय में यह कथन है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र यह तीनों रत्न हैं, इन्हीं से मोक्ष प्राप्त होती है। मोक्ष का अर्थ क्या? समस्त कर्म के नाश से साक्षात् मिलनेवाला महा आनंद का लाभ वह मोक्ष है। देखो! इस चैतन्यवस्तु के समझने की अंतरंग में जिज्ञासा, लगन और उत्साह होना चाहिये। आत्मा क्या है? यह कभी सुना नहीं। समयसार की चौथी गाथा में आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्धात्मा की बात जीव ने कभी सुनी ही नहीं, अंदर रुचि प्रकट करके कभी सुनी नहीं। जिसकी आत्म-रुचि जागृत हुई हो उसको उस आत्मा के श्रवण-मनन की कितनी उत्सुकता होगी?

समस्त कर्म के नाश से जो साक्षात् महा आनंद की प्राप्ति होती है, उसका नाम मोक्ष है। शुभभाव भी कर्म का कारण है। मोक्षपद तो शुभ-अशुभ दोनों भावों से रहित है। वह जिसे रुचता है, उसे शुभ-अशुभ राग की रुचि छोड़नी चाहिये। दयादि भाव भी कर्म बंध के कारण हैं, उनके अभाव होने पर ही मोक्ष होता है। पैसे का लाभ, स्वर्ग का लाभ अथवा तीर्थंकर पद का लाभ इन सभी में आत्मा के आनंद का लाभ नहीं होता; आनंद तो पुण्य-पाप के अभाव से आत्मा में प्रकट होता है।

कर्म के कारण की रुचि छोड़कर अर्थात् पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर शुद्ध चैतन्य की प्रथम रुचि करे वहाँ साधक के अमुक आनंद तो प्रकट हो ही जाता है पश्चात् पुण्य-पाप का सर्वथा अभाव करके साक्षात् महा आनंद प्रकट होता है। जिसे कोई भी कर्म रुचता है, उसे आत्मा का मोक्ष नहीं रुचता तथा जिसे आत्मा की रुचि है, उसे कर्म के कारणरूप किसी भी शुभाशुभ भाव की रुचि नहीं।

समस्त कर्मों के नाश से साक्षात् महा आनंद का लाभ नया मिलता है, अर्थात् मोक्ष-पर्याय नयी प्रकट होती है। संसारपर्याय का नाश करके मोक्षपर्याय प्रकट होती है, वह किसमें से प्रकट होती है? स्वभाव में वह शक्ति त्रिकाल है, उसमें से मोक्ष पर्याय प्रकट होती है और उसमें महा आनंद का लाभ है। साधक को सम्यग्दर्शन होने पर अपूर्व आनंद तो प्रकट होता ही है किंतु मोक्षपद में तो महा आनंद है।

उस महा आनंद का उपाय क्या? उस महा आनंद का उपाय पूर्वोक्त निरुपचार

रत्नत्रयरूप परिणति है। पुण्य-पापरहित चिदानंद कारणपरमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता का नाम निरुपचार रत्नत्रय है।

श्रीमद् कहते हैं कि 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता'

यहाँ कहा कि 'मोक्ष कह्यो महा आनंद'

ऐसी महा आनंदरूप मोक्षदशा शुद्ध रत्नत्रय से प्रकट होती है। शुद्ध रत्नत्रय है वही निरुपचार रत्नत्रय परिणति है। बीच में व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का जो शुभराग है, वह वास्तव में रत्नत्रय नहीं है, वह तो उपचार रत्नत्रय है। त्रिकाल निजपरमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप जो परिणति है, वह निरुपचार रत्नत्रय परिणति है और वही मोक्ष का उपाय है।

अनंत काल में ऐसा रत्नत्रय ही प्रकट नहीं किया। अनंत बार राजा हुआ, देव हुआ, पंच महाव्रतधारी द्रव्यलिंगी साधु हुआ; किंतु आत्मा का स्वभाव क्या है, उसका भान किये बिना भटकता ही रहा। आत्म-स्वभाव के आश्रय से रागरहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की जो निरुपचार परिणति है वही मोक्ष का उपाय है। संसार और मोक्ष यह दोनों पर्यायें हैं। उसमें मोक्ष वह महाआनंदरूप शुद्ध पर्याय है और उसका उपाय शुद्ध रागरहित रत्नत्रय परिणति है। परिणति अर्थात् पर्याय; निरुपचार रत्नत्रय अर्थात् वीतरागी रत्नत्रय, वह मोक्षमार्ग है। उस निरुपचार रत्नत्रय परिणति में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश हो जाता है और उस निरुपचार रत्नत्रय परिणति के भेद करके कहें तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसे तीनों का भिन्न कथन होता है।

देवाधिदेव परमेश्वर सर्वज्ञदेव ने जो वस्तु-स्वरूप कहा है, वह कभी जाना ही नहीं। जिसको एकसमय में तीन काल तीन लोक का ज्ञान है, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा को वह परमात्मदशा कहाँ से प्रकट हुई? अपनी आत्मा में शक्ति थी, उसी में से यह परमात्मदशा प्रकट हुई है। ऐसी शक्ति प्रत्येक आत्मा में भरी हुई है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें एकाग्रता करना ही भगवान ने मोक्ष का उपाय कहा है। बीच में व्यवहार रत्नत्रय और शुभराग आता है, किंतु वह निरुपचार रत्नत्रय नहीं है; निरुपचार रत्नत्रय तो रागरहित है। चैतन्य की शुद्ध परिणति प्रकट हुई उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समावेश हो जाता है। सम्यग्दर्शन परिणति है, गुण नहीं। परिणति अर्थात् पर्याय, दशा, हालत, अथवा अंश। गुण तो त्रिकाल है, वह नवीन

प्रकट नहीं होता; नवीन तो पर्याय प्रकट होती है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों को अभेद करके उसे रत्नत्रय परिणति कहा और उसके भेद करके कहने पर दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भिन्न-भिन्न कथन होता है। उन दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों के लक्षण भी भिन्न-भिन्न हैं, जो आगे कहे जायेंगे।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही आत्मा में अभेदरूप से वर्त रहे हैं। किंतु समझाने के लिये उन तीनों का भेद करके वर्णन करेंगे। जिन्हें सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा नहीं है, उन्हें तो व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नहीं है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचाने और उनसे विरुद्ध अन्य को न माने, तब तो अभी व्यवहार श्रद्धा हुई कही जायेगी। वह व्यवहार श्रद्धा भी पुण्य का कारण है। मोक्ष का कारण तो चैतन्य स्वभाव की रागरहित श्रद्धा-ज्ञान-रमणता ही है। उनमें से प्रत्येक का अलग-अलग स्वरूप आगे की गाथाओं में कहेंगे।

अब चौथी गाथा की टीका पूर्ण करते हुए श्लोक कहते हैं :—

मोक्षोपायो भवति यमिनां शुद्धरत्नत्रयात्मा
ह्यात्मा ज्ञानं न पुनरपरं दृष्टिरन्यापि नैव।
शीलं तावन्न भवति परं मोक्षुभिः प्रोक्तमेतद्
बुद्ध्वा जन्तुर्न पुनरुदरं याति मातुः स भव्यः ॥११॥

मुनियों को मोक्ष का उपाय शुद्धरत्नत्रयात्मक (शुद्धरत्नत्रय परिणति से परिणमन की हुई) आत्मा है। ज्ञान इससे कुछ अन्य नहीं है तथा दर्शन व शील (चारित्र) भी इससे कुछ अन्य नहीं हैं; ऐसा मोक्ष प्राप्त करनेवालों (अरहंत भगवंतों) ने कहा है। ऐसा जानकर जो भव्यजीव माता के उदर में पुनः नहीं आता वह भव्य है।

मुनि कैसा होता है? निर्ग्रंथ होता है। मात्र बाह्य निर्ग्रंथता ही नहीं; किंतु अंतर में मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष की परिग्रह से भी रहित अभ्यंतर निर्ग्रंथता सहित होता है और बाहर में वस्त्रादि परिग्रहरहित नग्न दिगम्बर दशा हो वह मुनि है। ऐसे मुनिवरों को रत्नत्रयात्मक शुद्ध आत्मा है, वह मोक्ष का उपाय है।

'क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धान्य, दासी, दास, कपड़ा, धन तथा बर्तन यह दस प्रकार का बाह्य परिग्रह है; एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नव नोकषाय यह चौदह प्रकार का

अभ्यंतर परिग्रह है'—ऐसी बाह्याभ्यंतर परिग्रहरहित निर्ग्रंथ मुनिदशा होती है। अंदर में विपरीत श्रद्धा पड़ी हो उसके तो मिथ्यात्व का महान परिग्रह पड़ा है, उसे मुनिदशा कैसे हो सकती है ? जिसकी प्ररूपणा विपरीत हो, पुण्य से धर्म और निमित्ताश्रय से लाभ होना बताता हो; उसके तो अंदर से मिथ्यात्व का परिग्रह भी अभी छूटा नहीं है अर्थात् सम्यग्दर्शन भी नहीं है, उसे निर्ग्रंथ नहीं कहते।

अंतर में चैतन्यस्वभाव के आश्रय से ही धर्म है, ऐसे चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा से जिसने मिथ्याव का परिग्रह छोड़ा है और उसमें लीनता से जिसने रागादि परिग्रह भी छोड़ा है तथा बाह्य में वस्त्रादि परिग्रह जिसके सहज ही छूट गये हैं—ऐसे मुनि को निर्ग्रंथ कहते हैं। ऐसे निर्ग्रंथ संत मुनि वर्तमान में महाविदेह में हजारों विराज रहे हैं। कुन्दकुन्द भगवान वहाँ गये थे, उनको भी ऐसी ही निर्ग्रंथ मुनिदशा थी। ऐसे मुनियों को मोक्ष का कारण क्या ? रत्नत्रयरूप से परिणमित निज अभेद आत्मा वही मोक्ष का उपाय है। अभेद रत्नत्रयपने परिणमित आत्मा ही मोक्षमार्ग है और भेद करके कहें तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्षमार्ग है। किंतु व्यवहाररत्नत्रय तो शुभराग है, वह मोक्षमार्ग नहीं है।

चैतन्यबिम्ब ज्ञानानंद सूर्य भगवान आत्मा है—उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणतारूप परिणमित आत्मा ही मोक्ष का उपाय है; रत्नत्रयरूप परिणमित आत्मा ही दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है, जो सम्यग्ज्ञान प्रकट हुआ, वह आत्मा से भिन्न नहीं है, आत्मा स्वयं तद्रूप परिणमित हो गया है। सम्यग्दर्शन भी आत्मा से भिन्न नहीं, वह भी आत्मा में अभेद है; और शक्ति अर्थात् सम्यक्चारित्र वह भी इस आत्मा से भिन्न नहीं है अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मा में अभेद हैं, इस आत्मा से भिन्न नहीं हैं। रत्नत्रयरूप से जो आत्मा परिणमित हुआ वह आत्मा ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। निजात्मा की ओर झुकाव करके जो प्रतीति-ज्ञान और रमणता हुई वही मोक्षमार्ग है।

मोक्ष को प्राप्त ऐसे भगवान अरहंत परमात्मा ने तो ऐसा मोक्षमार्ग कहा है। यह बात समझकर अंतर में परिणमन करना योग्य है। अंतरंग में प्रथम विश्वास आना चाहिये। एक समय में तीनकाल तीनलोक के ज्ञाता सर्वज्ञ हैं—ऐसी भी जिसे प्रतीति न हो उसे तो ऐसे आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता हो सकती नहीं।

यहाँ तो टीकाकार कहते हैं कि जिन सर्वज्ञ भगवंतों ने मोक्ष पाया है, उन्होंने यह बात कही है। उन्होंने ऐसे मोक्षमार्ग से मोक्ष को प्राप्त किया है और उन्होंने ही ऐसा मोक्ष का उपाय कहा है। राग तो परमार्थतः आत्मा से भिन्न वस्तु है, उसको भगवान ने मोक्षमार्ग नहीं कहा। अंदर में चैतन्य स्वभाव की रागरहित श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र वह रत्नत्रय है, और ऐसे रत्नत्रयरूप से परिणमित आत्मा मोक्ष का कारण है। जो सिद्ध हो गये उनके तो वाणी ही नहीं होती, परंतु जिन्होंने केवलज्ञान प्रकट करके महाआनंदरूप भावमोक्ष पाया है, ऐसे श्री तीर्थंकर भगवंतों ने ऐसा यह मोक्ष का उपाय कहा है।

अब वीतराग कथित ऐसे मोक्ष के उपाय को जानकर जीव को क्या करना ? तो कहते हैं कि यह जानकर जो जीव माता के उदर में पुनः नहीं आता, वह भव्य है। मुनि को अपनी मोक्षदशा एकदम निकट वर्तती है, एकाधभव बीच में रह गया है, उसका नकार करते जाते हैं। ऐसे सर्वज्ञकथित मोक्ष का उपाय जानकर जो जीव, माता के उदर में फिर से नहीं आते, वे भव्य हैं। हमने तो ऐसा मोक्षमार्ग जान लिया है और हम फिर से माता के उदर में आनेवाले नहीं हैं, अब हमको विशेष भव नहीं हैं। जो ऐस मोक्षमार्ग का निर्णय कर लेते हैं, उन्हें भी विशेष भव नहीं होते।

देखो तो सही; अंतर के उत्साह को। यहाँ तो कहते हैं कि जो जीव ऐसा समझ कर पुनः नवीन माता के पेट में अवतरित नहीं होता, उसे हम भव्य कहते हैं। यहाँ साधारण भव्य की बात नहीं ली; किंतु जिसने अंदर में चैतन्य का निर्णय करके अवतार का नाश किया है, जो जीव अल्पकाल में मोक्ष जानेवाला है, उसे हम भव्य कहते हैं। भगवान ने जो शुद्ध मोक्षमार्ग कहा है, वैसे मोक्षमार्ग को जानो तो सही ! अंदर चैतन्यस्वभावी कारणपरमात्मा बिराजमान है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-रमणता ही मोक्ष का उपाय है; ऐसा प्रथम निर्णय तो करो। ऐसा निर्णय जो करेगा वह भी अल्पकाल में मोक्ष प्राप्त करेगा।

आत्मा का भरोसा करो, आत्मा को छोड़कर पर के भरोसे में भूल रहे हो। भगवान ! शांत हो-मनुष्य अवतार मिला और वीतराग के मत में आये, तो वीतराग-सर्वज्ञ मोक्ष का उपाय क्या बताते हैं, वह तो सुन और अंदर समझ।

जो जीव ऐसे मोक्षमार्ग को जानता है, वह जीव पुनः दूसरी माता की कुक्षि में गर्भ धारण

नहीं करता, क्योंकि जिस वस्तु के स्वभाव में भव नहीं; ऐसी वस्तु का भरोसा करे और भव की शंका बनी रहे, यह संभव नहीं। वस्तु में भव नहीं, और उस वस्तु की श्रद्धा-ज्ञान करनेवाले को भी विशेष भव रहते नहीं। इसलिये कहा कि जो जीव भगवान का यह उपदेश जानते हैं, वे नवीन माता के उदर में नहीं जाते। वीतराग की ऐसी अनेकांत नीति है कि चैतन्यस्वभाव में विकार नहीं और विकार में स्वभाव नहीं – ऐसी अनेकांत नीति को जानकर चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता प्रकट करके भव्य जीव नयी माता के उदर में अवतरित नहीं होते।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥

आत्मा व्यवहार से पुद्गलकर्म आदि का कर्ता है, निश्चय से चेतनकर्म का कर्ता है, और शुद्धनय से शुद्धभावों का कर्ता है।

आत्मा व्यवहार से पुद्गलकर्म आदि का कर्ता है। कर्म बाँधने में जीव के विकार का निमित्तपना है, इसलिये उपचार से कर्मों का कर्ता कहा है। विकारी पर्यायरूप से जीव परिणमता है। अतएव अशुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से विकार का कर्ता है, और शुद्धनय से तो जीव वीतरागी शुद्धभावों का कर्ता है। निश्चय से पुद्गलकर्म की दशा का कर्ता तो उसके परमाणुद्रव्य हैं। वहाँ व्यवहार से जीव का उस काल में रागभाव निमित्त है, इससे उसका कर्ता जीव है – ऐसा उपचार से कहा जाता है।

विकार की उपस्थिति है, वह नूतन कर्म में निमित्त है। व्यवहार से कर्ता कहा अर्थात्

निश्चय से उसका कर्ता नहीं है, किंतु अपने भाव का कर्ता है। मन-वचन-काय की क्रिया - चलना, बोलना, लेना, रखना, यह जड़ की स्वतंत्र क्रिया है। विकार से भी रहित त्रिकाल निर्मल ज्ञायकस्वभावी हूँ, ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि को है। इसलिये वह जड़कर्म बाँधा जाये उसमें और पुण्य-पाप का विकार हो उसमें (वह समकिती) निमित्त भी नहीं है। पुण्य-पापतत्त्व शुद्ध आत्मतत्त्व नहीं हैं। शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना में शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान-तन्मयतारूप वीतरागी परिणाम लेना है। अज्ञानी ऐसी स्वभाव-भावना से रहित है, वह कर्म और विकार को निमित्त होता है। मैं निमित्त का कर्ता हूँ ऐसा वह मानता है।

चैतन्यस्वभाव को भूला हुआ और विकारकर्म की भावनावाला-कर्तापने की भावना करता है। ज्ञानी को ऐसी भावना नहीं होती। मैं तो त्रिकाल ज्ञायक हूँ, मैं क्षणिक विकाररूप होनेवाला नहीं; ऐसा ज्ञानी एक ज्ञानानंद की रुचिवाला है। अज्ञानी पर्याय की रुचिवाला है, अर्थात् त्रिकाली शुद्धज्ञायक की अरुचिवाला है (अश्रद्धावान है)। उसको विकार की मुख्यता की भावना रहती है, इससे अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का कर्ता है। कर्मादि नजदीक एक क्षेत्रावगाही संबंध है, इसलिये अनुपचरित; आत्मा नहीं है इसलिये असद्भूत; और निमित्त तथा भेद है इसलिये व्यवहार है।

ज्ञानी को पूर्ण स्वभाव की सतत् रुचि है। इससे वह ज्ञान-दर्शन-वीर्यस्थिरता की अधिकता से बरतनेवाला होने से वह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय से भी कर्मादि का कर्ता नहीं है। ज्ञानी को अंतर्मुखी ज्ञान की ओर झुकाव है, वही मुख्य है। अज्ञानी को बहिर्मुखी झुकाव है, वह इच्छा किया करता है। मैं निमित्त हूँ तो पर का कार्य होता है, इसप्रकार निमित्त-कर्ता की भावना किये बगैर वह नहीं रहता; क्योंकि उसको अविकारी चैतन्य की रुचि नहीं होती। जिसको संयोग और विकार की रुचि है, उसको ज्ञातापना भी नहीं रुचता। इसलिये मैं औदारिक वैक्रियिक आहारक शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियोग्य परमाणु जो कि नोकर्म कहे जाते हैं, उनका कर्ता हूँ, ऐसा अज्ञानी मानता है। इसलिये उसको व्यवहार से कर्ता कहा है।

आहारक शरीर की लब्धिवाले तो ज्ञानी मुनि होते हैं, वे तो कभी उसमें कर्तापन नहीं मानते। अज्ञानी संयोग को देखकर इच्छा में रुकता या ठहरता है। ज्ञानी संयोग और राग को जानता है, लेकिन उसका कर्ता नहीं होता। बाह्य स्थित घड़ा वगैरह का कर्ता जीव को कहना,

वह उपचरित असद्भूतव्यवहारनय से है। रोटी, घट, वस्त्रादि की पर्याय उनसे होती है; लेकिन उस समय स्त्री, कुम्हार अथवा जुलाहा को योग का कंपन और इच्छा है; उसका निमित्त मानकर उसको उपचरित असद्भूतव्यवहार से कर्ता कहा जाता है। वस्तुतः वह कर्ता नहीं है। घट-पट आदि वस्तु से दूरवर्ती है, इसलिये उपचरित; वह वस्तु आत्मा नहीं इसलिये असद्भूत; और परनिमित्त का बतानेवाला भेद का कथन है, इसलिये व्यवहार है।

इसप्रकार कर्ता का उपचार है। व्यवहार से कर्ता कहा, वहाँ यथार्थ में कर्ता नहीं है, ऐसा उसमें आ जाता है, समावेश होता है। लेकिन कार्य होता है तब उसमें कौन निमित्त है, उसका ज्ञान कराता है। लेकिन उस निमित्त का ज्ञान किया कब कहा जाता है ? कि चैतन्यस्वभाव का मुख्यपना (मुख्यता) है, उसको निमित्त का यथार्थज्ञान होता है। परवस्तु अपने कारण से अपने काल में परिणमित होती है, उसमें जीव का कर्तापना मानना वह तो अज्ञान है – ऐसा जानकर मात्र एक ज्ञानस्वभाव में श्रद्धा-ज्ञान-तन्मयता की भावना करना उसका नाम धर्म है।

जीव कर्ता है, यह अधिकार चलता है। संसार में कोई वस्तु का कर्ता ईश्वर आदि है, ऐसा माने वह मिथ्या है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु नित्य सत् होने से स्वयं के आधार से स्थित रहकर स्वयं की अवस्थारूपी कार्य को करती है। परसत्ता में किसी का – कोई का कार्य नहीं है। राग-द्वेष-मोह आदि अरूपी विकार, यह रागी जीव का भावकर्म है। ज्ञानावरणादि आठ कर्म को जड़ कहते हैं, जीव राग करे, उसमें वह अंतरंग निमित्त है और बाह्य में शरीरादि नोकर्म निमित्त हैं। जड़कर्म की सत्ता जीव से त्रिकाल भिन्न है। जड़कर्म और शरीरादिरूप से परमाणु परिणमित होते हैं, उनको जीव नहीं परिणमाता; लेकिन वे परिणमित होते हैं, उसमें जीव का राग निमित्त है। इसलिये जीव को व्यवहार से उनका कर्ता कहा जाता है, यह बात आ जाती है।

अशुद्ध निश्चय की अपेक्षा से आत्मा चेतन कर्मों (कार्य)- दया, दान, व्रत, हास्य, क्रोध आदि भावरूपी कर्मों का कर्ता है। त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से राग आदि का कर्ता नहीं है, लेकिन वर्तमान में जीव स्वयं रागरूप परिणमित होता है। जड़कर्म निमित्त है इसलिये रागादि होते हैं, ऐसा नहीं लिया है, इसलिये पाठ में (गाथा में) कहा है कि 'णिच्चयणयदो चेदणकम्माणादा' जीव स्वयं के अस्तित्व में पर्याय में रागादि करता है।

आत्मा कैसा है ? वस्तुस्वरूप से तो शुद्ध है, ध्रुव नित्यानंद आत्मा सम्यग्दर्शन का

विषय है। वह तो संसार अर्थात् विकृत दशा, मिथ्यात्व वासना, रागादि विकल्परूप उपाधि उनसे रहित निष्क्रिय है। ऐसे स्वयं के अक्रिय ज्ञानानंद आत्मा का जिसको भान नहीं है, ऐसा जीव रागादि उत्पन्न करनेवाले कर्मों का उपार्जन करता है। अर्थात् चैतन्य स्वभाव भूलकर और विकार की रुचि से पराश्रय करे तो उसको राग की उत्पत्ति होती है। कर्म रागादि कराते हैं ऐसा नहीं है, किंतु स्वभाव को भूलकर परावलंबी झुकाव करता है तो रागरूप परिणमित होता है, वहाँ कर्म निमित्त है।

शक्तिरूप से तो प्रत्येक आत्मा इस समय भी शुद्ध ही है, उसको भूलकर वर्तमान में रुचि करता है तो शुभ-अशुभ रागादिरूप चेतनकर्म-भावकर्म है, उसका अशुद्ध निश्चयनय से कर्ता होता है। पूजा, भक्ति, दान, दया, व्रतादि परिणाम वह शुभभाव है। हिंसा, काम, क्रोधादि अशुभभाव है। उनका मैं कर्ता हूँ, उसरूप से मैं होनेवाला हूँ, ऐसा अनादि से पर्यायबुद्धिवाला अज्ञानी जीव मानता है। क्या करें? पूर्व के तीव्र कर्म ऐसे उदय में आये कि हैरान परेशान हो गये। ये 'कर्म भोगना पड़ते हैं' ऐसा अज्ञानी मानता है। किंतु यह बात गलत है। वस्तु का स्वरूप वैसा नहीं है।

अब अशुद्ध निश्चयनय का अर्थ कहते हैं। कर्मरूप संयोग के अवलंबन से उत्पन्न होने से भावकर्म अशुद्ध कहा जाता है। और जैसे स्वयं की वर्तमान योग्यता से अग्नि में तप्तायमान लोहे का गोला उस समय गर्म ही है; वैसे स्वयं की वर्तमान योग्यता से विकार के समय जीव उस रूप तन्मय होने से शुभ-अशुभभावरूप से स्वयं परिणमित हो गया है। इसलिये स्व-अपेक्षा से निश्चय कहा जाता है। मेरे अपराध से मेरे कारण से राग का कार्य है, कर्म के कारण से नहीं।

इसप्रकार जीव रागादि भावकर्म का कर्ता अशुद्ध निश्चय से है। लोहा स्वयं की योग्यता के कारण से गर्म होता है। अग्नि के कारण से लोहा गर्म हो तो लकड़ी एक सिरे पर गर्म है और दूसरे सिरे पर ठंडी है, ऐसा क्यों है? क्योंकि उसकी योग्यता ही ऐसी है। उसीप्रकार कर्म का उदय है इसलिये जीव को राग होता नहीं है, लेकिन स्वयं की उस समय की विकारी योग्यतानुसार राग होता है। यदि कर्मोदय के कारण से होता है तो एक क्षेत्र में अनेक जीव हैं, उनको उसप्रकार का उतना राग क्यों नहीं होता? जिस क्षेत्र में सिद्ध भगवान हैं, उसी आकाश

क्षेत्र में पाँच स्थावर एकेन्द्रिय जीव अनंत हैं, उनको कर्म का उदय है। सिद्ध रागरूप क्यों नहीं होते? क्योंकि उनमें की (स्थावर जीवों की) योग्यता नहीं है। इससे निश्चित हुआ कि जो स्वयं को भूलकर पराश्रयरूप अपराध करता है, उसकी उस समय की योग्यतानुसार रागादि विकार होता है। स्वयं करे तो होता है। अतएव निश्चय से तन्मय होकर अशुद्धता का कर्ता जीव है।

अब 'सुद्धणया सुद्धभावाणं' का अर्थ करते हैं। जो जीव शुभाशुभ व्यापार (प्रवृत्ति) से रहित शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव का भान कर परिणमता है, स्वतंत्र कर्तापने से त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक हूँ—ऐसी अंतर्मुखीदृष्टि से निर्मल अवस्थारूप कार्य करता है; वह सम्यग्दृष्टि है। वह अल्पज्ञ अवस्था में अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख आदि शुद्ध भावों को अवलंबन कर आंशिक निर्मल पर्याय का एकदेश शुद्ध निश्चयनय से कर्ता होता है। चौथा पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ आदि गुणस्थानों में जितने अंश में स्वभावाश्रित तन्मयरूप से शुद्ध दशा उत्पन्न की, वह वीतराग भावरूप निर्मलता हुयी; वह ज्ञानी का प्रिय कर्म है। साधक को व्रत-पूजा-भक्ति वगैरह का शुभराग अवश्य आता है, लेकिन वह उससे धर्म की पुष्टि नहीं मानता है।

साधक जीव स्व-सन्मुख अंश से वीतरागी दशा का कर्ता तन्मयपने से हुआ है, इसलिये एकदेश शुद्ध निश्चयनय से वह शुद्ध भावों का कर्ता है और सिद्ध भगवान मुक्त दशा में तो पूर्ण शुद्ध निश्चयनय से अनंत ज्ञानादि शुद्ध भावों के कर्ता हैं। उस पूर्ण ज्ञान में नय नहीं है, किंतु साधकनय द्वारा विचार करता है। [क्रमशः] ●●

नया प्रकाशन

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल की नवीनतम कृति

सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध तथा जैन तत्त्वज्ञान को सरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत करनेवाला सशक्त कथानक

सत्य की खोज

[पृष्ठ १८० : मूल्य सिर्फ २ रुपये]

पर्यूषण आदि धार्मिक उत्सवों एवं शादी आदि सामाजिक अवसरों पर वितरण करनेवालों को १०० से अधिक प्रतियाँ लेने पर २५ प्रतिशत कमीशन। पाँच सौ से अधिक प्रतियाँ लेनेवालों का उनकी इच्छानुसार नाम भी छाप दिया जायेगा।

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– पर्याय स्वयं संपूर्ण वस्तु नहीं है फिर भी वह संपूर्ण वस्तु को कैसे जान लेती है ?

उत्तर– एक मतिज्ञान की पर्याय में भी इतनी शक्ति है कि वह संपूर्ण आत्मा को जान ले। पर्याय स्वयं परिपूर्ण वस्तु नहीं है, यह बात तो ठीक है, फिर भी संपूर्ण वस्तु को जान लेने की शक्ति उसमें है। केवलज्ञान पर्याय भले ही एक समय की है, परंतु समस्त स्व-पर को जान लेने की अपार शक्ति उसमें है। पर्याय स्वयं परिपूर्ण वस्तु हो तभी वह परिपूर्ण वस्तु को जान सके – ऐसा नहीं है। जैसे आत्मा छह द्रव्यों रूप न होने पर भी छह द्रव्यों को जान लेता है, ऐसी उसकी शक्ति है; उसीप्रकार एक पर्याय यद्यपि संपूर्ण वस्तु नहीं है, फिर भी संपूर्ण वस्तु को जान लेने की उसकी शक्ति है। जान लेने का कार्य तो केवल पर्याय में ही होता है, कहीं द्रव्य-गुण में नहीं होता।

प्रश्न– क्या अज्ञानी को प्रथम से ही आत्मा की बात कहनी चाहिये।

उत्तर– समयसार की गाथा ८ में आचार्यदेव ने आत्मा आनंदस्वरूप है, उसको पहचानने के लिये समझाया है। प्रथम ही द्वीप, समुद्र, लोक की रचना आदि की जानकारी अथवा व्रतादि करने के लिये नहीं कहा; अपितु शुद्धात्मा को पहचानने के लिये कहा है। और समझने के लिये आनेवाला भी अभी आत्मा को समझा नहीं है, फिर भी जिज्ञासा से टकटकी लगाकर देख रहा है, उससे कहते हैं कि जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सदैव प्राप्त हो उसे आत्मा कहते हैं। इसप्रकार व्यवहारी जीवों को भी प्रथम शुद्धात्मा ही समझाया है। अनादिकालीन बंधन से छूटकर मुक्ति कैसे प्राप्त हो वह आचार्यदेव अज्ञानी जीव को समझाते हैं।

प्रश्न– शास्त्र द्वारा आत्मा को जाना और बाद में परिणाम आत्मा में मग्न हुए। इन दोनों में

आत्मा के जानने में क्या अंतर है ?

उत्तर– अनंत गुण अंतर है। शास्त्र में जानपना किया, यह तो साधारण धारणारूप जानपना है और आत्मा में मग्न होकर अनुभव में आत्मा को प्रत्यक्ष वेदन से जानता है। अत: इन दोनों में भारी अंतर है।

प्रश्न– पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत – ऐसे धर्मध्यान के चार प्रकार हैं, उनमें कितने सविकल्प हैं और कितने निर्विकल्प हैं ?

उत्तर– परमार्थ से तो चारों ही प्रकार के धर्मध्यान निर्विकल्प हैं, क्योंकि जब विकल्प छूटकर उपयोग स्व में स्थिर हो तभी वास्तविक धर्मध्यान कहा जाये। प्रथम पिंडस्थ अर्थात् देह में स्थित शुद्ध आत्मा; पदस्थ अर्थात् शब्द के वाच्यरूप शुद्ध आत्मा; रूपस्थ अर्थात् अरिहंत सर्वज्ञदेव; तथा रूपातीत अर्थात् देहातीत सिद्ध परमात्मा—इन चार प्रकार के स्वरूप का अनेक विधि चिंतवन–अन्य स्थूल विकल्पों में से छूटकर, मन के एकाग्र करने के समय आवे, उसे व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं। पश्चात् वह विकल्प भी छूटकर निजस्वरूप में उपयोग जमे तब वास्तविक धर्मध्यान कहा जाये। इस भाँति चार प्रकार के सविकल्प चिंतवन को व्यवहार से धर्मध्यान कहा, परमार्थ धर्मध्यान तो निर्विकल्प है। परमार्थ धर्मध्यान वीतराग है और वही मोक्ष का साधक है।

प्रश्न– स्व–पर प्रकाशक ज्ञान को प्रमाण कहा है, वह किसप्रकार ? छद्मस्थ के तो कहीं स्व–पर का एक साथ उपयोग होता नहीं ?

उत्तर– प्रमाण को स्व–पर प्रकाशक कहा है, वहाँ स्व और पर दोनों में एक साथ उपयोग होने की बात नहीं है, किंतु जिस ज्ञान ने स्व को स्व–रूप से और पर को पर–रूप से जाना है, वह सम्यग्ज्ञान प्रमाण है; इसप्रकार उसका स्व–पर प्रकाशकपना समझना। अवधि–मन:पर्यय का उपयोग तो पर में ही होता है तथापि वे भी स्व को स्वपने और पर को परपने जानते हैं, इसलिये प्रमाण हैं। छद्मस्थ का उपयोग तो जब स्व में होता है, तब पर में नहीं होता और पर में हो तब स्व में नहीं होता, तथापि प्रमाणरूप सम्यग्ज्ञान तो ज्ञानी के सदैव वर्तता है। पर को जानते समय भी 'मैं ज्ञान हूँ' ऐसा आत्मभान मिटता नहीं और यही ज्ञान की प्रमाणता है। ●●

समाचार दर्शन

सोनगढ़ - प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी वर्षाकालीन शिक्षण शिविर ११ अगस्त से ३० अगस्त तक अनेक उपलब्धियों के साथ संपन्न होने जा रहा है। इस शिक्षण शिविर में लाभ लेने के लिये आज दिनांक २३-८-७७ तक भारतवर्ष के मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात, बंगाल, कर्नाटक, आसाम, दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, बिहार आदि प्रांतों के जयपुर, उदयपुर, सहारनपुर, ललितपुर, इटावा, अलीगढ़, विदिशा, भोपाल, इंदौर, उज्जैन, जबलपुर, बम्बई, अशोकनगर, महिदपुर, लुहारदा, राजकोट, आगरा, कानपुर, बड़ौत, बैंगलोर, कलकत्ता आदि १७५ ग्रामों के १०५२ मुमुक्षु भाई-बहिन आ चुके हैं और अभी निरंतर आना चालू हैं। प्रतिदिन ४०-५० भाई-बहिन आ जाते हैं।

इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रातः समयसार कलश (कर्ताकर्म अधिकार) पर तथा दोपहर को श्री समयसार के परिशिष्ट में समागत ४७ शक्तियों पर अभूतपूर्व मार्मिक प्रवचन हो रहे हैं। सायं ७.१५ से ८.३० तक समागत भाइयों के अनेकानेक प्रश्नों का उत्तर पूज्य स्वामीजी स्वयं देते हैं। इसके अतिरिक्त आदरणीय विद्वद्वर्य सर्वश्री रामजीभाई, खीमजीभाई, बाबूभाई, ज्ञानचंदजी, नेमीचंदभाई, चिमनभाई आदि द्वारा समय-समय पर ली जानेवाली कक्षाओं में भी सभी भाइयों को पूरा-पूरा लाभ मिल रहा है। कक्षाओं में मोक्षमार्गप्रकाशक, जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका और छहढाला आदि का अध्ययन कराया जा रहा है।

इसके तत्काल बाद दिनांक ३१-८-७७ से १४-९-७७ तक प्रवचनकार-प्रशिक्षण शिविर आरंभ होने जा रहा है, जिसका संचालन डॉ. हुकमचंद भारिल्ल करेंगे। तदर्थ वे २७ तारीख को यहाँ पधार रहे हैं। उस समय भी पूज्य गुरुदेव के दोनों समय के प्रवचन और तत्त्वचर्चा तथा डॉ. भारिल्ल साहब के द्वारा ली जानेवाली कक्षाओं के अतिरिक्त माननीय विद्वद्वर्य सर्वश्री रामजीभाई, खीमजीभाई, लालचंदभाई, बाबूभाई, युगलजी और नेमीचंदजी पाटनी के प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा।

ध्यान रहे इस शिविर में वे प्रवचनकार बंधु ही भाग ले सकेंगे, जो मुमुक्षु मंडलों की

दैनिक गोष्ठियों में प्रवचन करते हैं तथा समय-समय पर सोनगढ़ की ओर से प्रवचनार्थ बाहर भी जाते हैं। अभी तक के प्रार्थना-पत्रों के आधार पर मालूम पड़ता है कि इसमें भी करीब २०० प्रवचनकार बंधु भाग लेंगे।

जन्मदिवस महोत्सव - सोनगढ़ में ही प्रशिक्षण शिविर के अंतिम दिन भादवा सुदी २ दिनांक ३०-८-७७ को सम्मानीय पूज्य बहनश्री चम्पाबेन का जन्मदिवस आता है। उनका जन्मदिन जिनेन्द्रपूजन-विधान आदि अनेक मांगलिक कार्यक्रमों के साथ बड़े धूम-धाम के साथ मनाया जायेगा।

इस अवसर पर श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी के आधार पर संस्कृत भाषा में लिखा गया एक नाटक भी प्रस्तुत किया जायेगा।

बहनश्री चंपाबेन शांतस्वभावी, अनुभवी महिलारत्न हैं; जिन्हें गुरुदेव 'धर्मरत्न' कहा करते हैं। वे और भी अनेक प्रकार भावविभोर होकर उनकी प्रशंसा किया करते हैं। ऐसे बहुत कम भाग्यशाली लोग हैं, जिनकी प्रशंसा स्वयं गुरुदेव करते हैं। उनमें बहिनश्री का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

बहनश्री के वचनामृत पृष्ठ सात पर दिये गये हैं। वहाँ देखिये। **— अखिल बंसल**

जयपुर - श्री टोडरमल स्मारक भवन में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के उद्घाटन के समय से ही एक आध्यात्मिक वातावरण बन गया है। दिनांक ८-८-७७ से १६-८-७७ तक श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा वालों के परम शांत एवं गंभीर आध्यात्मिक प्रवचनों एवं दिनांक १६-८-७७ से २५-८-७७ तक श्री पंडित गेंदालालजी बूंदीवालों के सचोट तार्किक प्रवचनों से अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई।

महाविद्यालय के छात्रों के वैचारिक एवं वाणी के विकास के लिये एक साप्ताहिक आध्यात्मिक विचार-गोष्ठी का आयोजन प्रत्येक रविवार को करने का निश्चय किया गया है। तद्नुसार इसका उद्घाटन दिनांक १४-८-७७ को श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा के द्वारा श्री ब्रह्मचारी रावजीभाई फलटण की अध्यक्षता में हुआ तथा दूसरी गोष्ठी दिनांक २१-८-७७

को श्री पंडित गेंदालालजी की अध्यक्षता में हुई। दोनों ही गोष्ठियाँ लगभग २-२ घंटे चलीं। इनमें प्रत्येक छात्र ने अपने विचार मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किये तथा गोष्ठियों को श्री युगलजी, पंडित गेंदालालजी, डॉ० भारिल्ल साहब का मंगल आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

— रमेशचंद जैन

नागपुर - प्रमुख आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता के दिनांक १-८-७७ से ३-८-७७ तक प्रातः चारों अनुयोगों पर बहुत ही विशद एवं विवेचनपूर्ण सारगर्भित प्रवचन हुए, जिनमें लगभग दो हजार से भी अधिक धर्मप्रेमी स्त्री-पुरुषों ने प्रतिदिन लाभ लिया। दिनांक ३-८-७७ को दिगम्बर जैन समाज की लगभग २८ संस्थाओं ने श्री बाबूभाई का हार्दिक अभिनंदन किया तथा श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को समाज से प्रचुर मात्रा में धनराशि देने की स्वीकृतियाँ प्राप्त हुई। यहाँ से आप कारंजा पधारे। वहाँ भी श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को अच्छा सहयोग प्राप्त हुआ।

— निर्मलकुमार जैनी, मंत्री, दिगम्बर जैन परवार मंदिर ट्रस्ट, नागपुर

छिंदवाड़ा - श्री पंडित बाबूभाई मेहता के पधारने से महती धर्मप्रभावना हुई। तीन दिन तक तीनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक एवं समयसार पर आपके बहुत ही मार्मिक प्रवचन हुए। समाज ने कुन्दकुन्द कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को अच्छा सहयोग दिया। **— अशोककुमार जैन**

कुरावड़ (उदयपुर-राज०) - यहाँ स्वाध्याय मंदिर में नवनिर्मित वेदिका पर विराजमान करने हेतु जयपुर से चार मूर्तियाँ आने के समाचार शनिवार, दिनांक ३०-७-१९७७ को ज्यों ही नगर में पहुँचे तो नगर की सारी समाज अत्यंत उत्साह से बैंड-बाजे के साथ उन्हें स्वाध्याय-मंदिर तक लायी। महती धर्मप्रभावना हुई। **— अम्बालाल जैन**

खण्डवा - पूज्य ब्रह्मचारी महाराज श्री हेमराजजी भोपाल के तत्त्वावधान में श्री त्रिलोकसार मंडल विधान का आयोजन श्रावण सुदी १ से भादवा सुदी १ तक आयोजित किया गया है। पूज्य महाराजश्री की वीतराग-विज्ञान रस से पूरित अमृतमयी ओजस्वी वाणी एवं वक्तृत्व शैली द्वारा समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन होते हैं; जिनसे प्रभावित होकर समाज के नवयुवक पुरुष एवं महिला वर्ग अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर धर्म लाभ ले रहे हैं। **—जुगमंदरलाल जैन वकील,** मंत्री, श्री दिगम्बर जैन समाज

पाठकों के पत्र

गुना (म.प्र.) से श्री सुगनचंदजी जैन 'बंधु' लिखते हैं:—

आत्मधर्म को पढ़ते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। इसको पढ़ते ही अपूर्व शांति एवं सुख का अनुभव होने लगा है। जो बात आज तक सुनी भी नहीं थी, आज परमपूज्य स्वामीजी की कृपा से एवं आपकी मधुर शैली से पढ़ने को मिल रही है।

ग्वालियर (म.प्र.) से श्री सुरेशचंदजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म पत्रिका ऐसी है कि इसे जो भी एक बार पढ़ लेता है, छोड़ना नहीं चाहता। पत्रिका में स्वामीजी के इंटरव्यू एवं संपादकजी की रचनात्मक कलाकृतियाँ ही पाठकों को इतना आकर्षित कर लेती हैं कि उसी दिन से अगले अंक का इंतजार करना पड़ता है।

चंदेरी (म.प्र.) से श्री पंडित चुन्नीलालजी शास्त्री लिखते हैं—

आत्मधर्म के सभी अंक अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं। जुलाई के आत्मधर्म में नियमसार प्रवचन में सामान्यध्रुव, विशेषध्रुव तथा सहज शुद्ध चेतनापरिणाम का स्पष्टीकरण अत्यंत पुरुषार्थप्रेरक है। इंटरव्यू रोचक है, आगे भी देते रहें।

सागर (म.प्र.) से श्री पंडित दामोदरदासजी लिखते हैं—

आत्मधर्म में दशलक्षण महापर्व के विषय में अपने प्रेमी ग्राहकों को जानकारी देकर उन्हें इस ओर प्रेरित किया है कि वे धर्म का माहात्म्य समझें। जून के अंक में शौचधर्म पर आप अपने विचार प्रकट कर चुके हैं। बाकी धर्मों पर भी आपके लेख छपेंगे। इसीप्रकार का क्रम चलता रहा तो अगले पर्यूषण के लिये पाठकों व व्याख्याताओं को काफी सामग्री दशधर्म के विषय में मिल जावेगी। लेख-माला समाप्त होने पर इन्हें पुस्तकरूप में अवश्य प्रकाशित करें।

इंदौर (म.प्र.) से श्री प्रोफेसर जमनालालजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म नियमित रूप से पढ़ता रहता हूँ। जुलाई अंक का संपादकीय पढ़ा। आपका परिश्रम तथा योजनाबद्ध प्रयत्न सराहनीय तथा अभिनंदनीय है।

मौ (म.प्र.) से श्री जिनेशचंद्रजी जैन एम.कॉम. लिखते हैं—

आपके संपादकीय लेख पढ़ने में अतीव आनंद आता है। ऐसा लगता है मानों आप समक्ष ही बैठकर प्रवचन कर रहे हों। आपका लेख चार बार पढ़ने पर भी ऐसा लगता है कि अभी और पढ़ना चाहिये। ज्ञानगोष्ठी रोचक लगती है।

देहली से श्री प्रेमचंदजी जैन लिखते हैं—

आत्मधर्म को पढ़कर आत्मिक शांति के साथ-साथ तत्त्वों का ज्ञान-वर्द्धन भी होता है। आप सब के प्रयत्नों से जैनधर्म का प्रसार दिनोंदिन वृद्धि करेगा।

जगदलपुर (म.प्र.) से श्री सुधीरकुमारजी जैन लिखते हैं—

पिछले ४ माह से आत्मधर्म अध्ययन हेतु मंगाया है। प्रत्येक ९-१० तारीख को पोस्टमैन का इंतजार करना पड़ता है। आत्मधर्म के प्रत्येक पृष्ठ कई बार पढ़ने पर भी मन नहीं भरता। जुलाई अंक का 'भूतार्थ और अभूतार्थ' पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ।

❀*❀*❀ ❀*❀*❀ ❀*❀*❀

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें :—

(१) अधिकांश बंधु आत्मधर्म के रैपर को फेंक देते हैं, अत: वे किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर नहीं लिख पाते हैं; फलस्वरूप उनके पत्रों का उत्तर देना हमारे लिये संभव नहीं हो पाता। अत: इस अंक से ऊपर से रैपर लगाने की व्यवस्था खतम करके अब अंक पर ही पते चिपकाना शुरु किया है। अब सभी ग्राहक पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें। बिना ग्राहक नंबर लिखे पत्रों का उत्तर देना संभव नहीं होगा।

(२) इस माह केवल उन्हीं ग्राहकों को अंक भेजे जा रहे हैं जिनका सदस्यता-शुल्क आत्मधर्म कार्यालय में ५ सितम्बर तक प्राप्त हो चुका है।

(३) शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लिखें। यदि ग्राहक नंबर याद न हो तो अपना पुराना पता अवश्य लिखें ताकि उस पते से आपका ग्राहक नंबर देखा जा सके; अन्यथा आपको नया नंबर दे देने से हमें नया पता छपाना पड़ेगा जिससे संस्था को व्यर्थ में हानि उठानी पड़ेगी। हमने १० वर्ष के लिये पते छपा लिये हैं।

(४) फीस डबल जमा हो जाने पर अगले वर्ष के खाते में जमा करना संभव नहीं है। यदि पता बदलाना चाहें तो ३० सितम्बर तक पता बदला लें। उसके बाद पते छप जायेंगे। अत: पता बदलना संभव नहीं होगा व आपके पास डबल अंक आवेगा।

(५) कुछ बंधुओं ने आगामी वर्ष का चंदा भेजते समय अपना ग्राहक नंबर नहीं लिखा व अपना पता भी पहले वाला न लिखकर और कोई ही लिख दिया। फलस्वरूप हमने उनको नया नंबर दे दिया। ऐसे बंधुओं से निवेदन है कि वे अपना नया नंबर निरस्त कराने हेतु हमें अपने पुराने नंबर सहित लिखें, ताकि हमें उनका पता दुबारा न छपाना पड़े। जो अंक उन्हें डबल मिले हों वे कृपया वापिस भेज देवें।

वीतराग भाव ही उत्तमसत्य धर्म है

वीतराग भाव ही परमार्थ से उत्तम सत्य धर्म है। और अस्थिरता के कारण जब विकल्प उठे तब स्व और पर को हितकर, सत्य तथा प्रिय वचन बोलने का शुभराग सो व्यवहार से उत्तमसत्य धर्म है; **उसमें जो राग हो वह धर्म नहीं है, किंतु उस समय जितना वीतरागभाव है, उतना धर्म है।** वाणी बोली जाये या न बोली जाये, वह तो जड़ परमाणुओं की स्वतंत्र अवस्था है; आत्मा उसका कर्ता नहीं है। वाणी का कर्ता आत्मा है–जो ऐसा मानता है, वह अज्ञानी है, उसके सत्यधर्म नहीं होता।

सम्यग्ज्ञानपूर्वक सत्य बोलने का भाव हो, उस समय यदि वाणी निकले तो वह सत्य ही होती है – ऐसा मेल बतलाने के लिये निमित्त से कहा जाता है कि 'मुनियों को सत्य बोलना' उसमें ऐसा आशय है कि—मुनियों को आत्मस्वरूप में स्थिर रहकर वाणी की ओर का विकल्प ही न होने देना चाहिये, और यदि विकल्प हो तो असत्य वचन की ओर का अशुभराग तो नहीं होने देना। किंतु 'आत्मा जड़–वाणी का कर्ता है'—ऐसा कहने का तात्पर्य नहीं है।

वस्तुस्वरूप जैसा है वैसा ही सत्य जानना सो धर्म है। जैसी है वैसी ही सत्यवस्तु जाने बिना धर्म हो ही नहीं सकता। सम्यग्ज्ञान से वाणी–विकल्परहित आत्मस्वरूप को जानने के पश्चात् उस स्वरूप में स्थिरता करना उसमें उत्तमक्षमादि दशों धर्म समाविष्ट हो जाते हैं। और सत्य बोलने का, उपदेशादि का विकल्प उठे वह व्यवहार से उत्तमसत्य है। सत्य बोलने के विकल्प को अथवा वाणी को ज्ञानी अपना स्वरूप नहीं मानते।

सत्य–असत्य वचन की ओर का शुभ या अशुभ विकल्प आत्मा का स्वरूप नहीं है। सत्य–असत्य वचन, वैसे ही उस ओर का शुभ–अशुभ राग; उन दोनों से भिन्न रहकर आत्मा उनका ज्ञाता है। ऐसे आत्मस्वभाव के आश्रय के बिना यथार्थ सत्यधर्म नहीं हो सकता। शुद्ध आत्मस्वभाव की श्रद्धा के पश्चात् चारित्रदशा में आगे बढ़ने पर जो सत्यव्रतादि के विकल्प आते हैं–उन्हें उपचार से, व्यवहार से, निमित्त से उत्तमसत्य धर्म कहते हैं। परमार्थ से तो सत्य वचन की ओर का भी राग छोड़कर जो वीतराग भाव हुआ वही उत्तमसत्य धर्म है।

लौकिक सत्य बोलने के भाव तो जीव ने अनंत बार किये हैं; किंतु परमार्थसत्य का स्वरूप नहीं समझा। सच्चे ज्ञान से वस्तुस्वरूप का निश्चय किये बिना परमार्थसत्य नहीं होता। अज्ञानी जो कुछ बोलता है वह लौकिकसत्य भले हो; किंतु परमार्थ से तो वह असत्य ही है। परमार्थसत्य तो सम्यग्दर्शनपूर्वक ही हो सकता है। **आत्मा के त्रैकालिक शुद्धस्वभाव को जानकर उसमें विशेष स्थिरता के पुरुषार्थ द्वारा असत्य को (शुभ–अशुभ राग को) टाले वही उत्तमसत्य धर्म है।**

—पूज्य स्वामीजी

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	प्रेस में
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-२५
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	प्रेस में
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)	२-००
मैं कौन हूँ?	१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर	०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर	०-२५
अपने को पहचानिए	०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)	०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)	०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य	०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य	०-३०
सत्तास्वरूप	१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १	प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद	०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी	१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	३-००
सत्य की खोज (भाग १)	२-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४